॥ श्रीराम ॥

32023

भक्तराज केवट

[श्री राम चरित मानसान्तर्गत श्रीराम-केवट संवाद की सरस भावपूर्ण शंका-समाधान सहित अपूर्व व्याख्या]

लेखक एवं सम्पादक—

विद्याभूषण, मानस मार्त्तण्ड, वाणीविशारद

श्री पं० इन्दुभूषण जी महाराज

रामायणी

मानस कथा मण्डल

ब्रह्मकुण्ड - वृन्दावन

बम्बई निवासी श्री कालीदास जादव जी गाँधी ने अपने पूज्य पिता श्री जादवजी मावजी गाँधी की पुण्य स्मृति में इस संस्करण को

— प्रकाशित कराया —

दो शब्द

भक्तराज केवट के इस परिवर्द्धित एवं संशोधित संस्करण को रामायण प्रेमियों की सेवा में रखते बड़ा ही हर्ष हो रहा है। गत श्री रामनवमी के सुअवसर पर उत्तरप्रदेशके महामहिम राज्यपाल श्री के. एम. मुशी जी महोदय के आदेशानुसार जब उनके भारतीय विद्या भवन बम्बई में मानस प्रवचन के लिये गया तो वहाँ श्रा हर गोविन्द जी मेहता से; उनके रामायण प्रेम के कारण विशेष परिचय बढ़ा और उन्हींकी प्रेरणा से उनके सम्बन्धी भक्तवर श्री कालीदास जादव जी गाँधी महुवा वाले (भूतपूर्व चीफ इन्जीनीयर जूनागढ़ स्टेट) ने अपने पूज्य पिता श्री जादव जी भावजी गाँधी की पूण्य स्मृति में इस ग्रन्थ को प्रकाशित कराने का निश्चय किया। किन्तु बाद में कुछ व्यक्तिगत कठिनाइयों एवं अपने प्रचार कार्य में अत्यधिक व्यस्त होने के कारण पुस्तक के प्रकाशन में आवश्यकता से अधिक विलम्ब हुआ, आशा है प्रेमीगण मेरी विवशता के कारण हुए इस विलम्ब को क्षमा ही करेंगे। इस संस्करण में सुन्दर काण्डान्तर्गत "हनुमद्विभीषण संवाद" भी आदर्श भक्त विभीषण के नाम से व्याख्या सहित जोड़ दिया गया है, जिससे भक्ति-पथ के पथिकों विशेष कर शरणागति रहस्य के जिज्ञासुओं को अत्यधिक लाभ होगा ऐसी मेरी धारणा है। आशा है रामायण प्रेमी भक्त-गण इससे अवश्य ही लाभ उठायेंगे।

विनीत—

मानस कथा मण्डल ब्रह्मकुण्ड, श्रीवृन्दावन धाम	भक्तों का दासानुदास इन्दुभूषण

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

भक्तराज केवट

॥ श्रीजानकी वल्लभो विजयते ॥

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पश्चात्सुमित्रासुतः ।
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादि कोणादिषु ॥
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान् ।
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥

मांगी नाव न केवटु आना ।
कहइ तुम्हार मरम मैं जाना ॥

श्री रघुनन्दन सुमंत मंत्री को लौटा कर जब गंगा तट पर आये और केवट से नाव मांगी । वह न लाया और बोला, मैंने आपका मर्म (रहस्य) जान लिया है ।

मांगी नाव०० । कवितावली में प्रातः वन्दनीय गोस्वामीजी ने श्रीप्रभु के नाव मांगने के इस प्रसंग को बड़ा ही सुन्दर लिखा है यथा—

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े ।
जो सुमिरे गिरि मेरु सिलाकन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े ॥
तुलसी जिन के पद पंकज ते प्रगटी तटिनी जो हरे अघ गाढ़े।
ते प्रभु या सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करार ह्वै ठाढ़े ॥

भक्त शिरोमणि श्री सूरदासजी ने भी अपने एक पद में श्री लक्ष्मणजी द्वारा केवट से नौका माँगा जाना वर्णन किया है । यथा—

रे भैया केवट ले उतराई।
रघुपति महाराज इति ठाढे, तैं कित नाव दुराई॥
अबहिं सिला ते भई देव गति जब पग रेनु छुआई।
हौं कुटुम्ब काहे प्रति पारौं, वैसी यह है जाई॥
जाके चरन रेनु की महिमा, सुनियतु अधिक बड़ाई।
सूरदास प्रभु अगनित महिमा वेद पुरानन गाई॥
(सूर सागर)

एक आधुनिक कवि ने भी सुन्दर भाव लिखा है, यथा—
इस तरफ इसरार है दुनिया भर के शाहनशाह की।
उस तरफ इनकार है एक मस्त लापरवाह की॥
प्रेम के झगडे में चलती है ये कोशिश चाह की।
देखें बरसत की दया हो जिद रहे मल्लाह की॥
देखिये किस की विजय हो और किस की हार हो।
दोनों मल्लाहों में पहिले किसकी किस्ती पार हो॥

शंका—मर्यादा पुरुषोत्तम परात्पर ब्रह्म भगवान श्रीरामचन्द्रजी महाराज के विषय में गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज ने श्री रामचरित मानस में अनेक स्थलों में लिखा है कि कोई भी उनके मर्म को नहीं जानता है। यथा—

(क) पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई।
(ख) मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानै कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन विधि होइ॥
(ग) निज निज रुख रामहि सबु देखा।
कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा॥
(घ) जग पेखन तुम्ह देखनि हारे।
विधि हरि सम्भु नचावनि हारे॥
तेउ न जानहिं मर्म तुम्हारा।
और तुमहिं को जाननि हारा।

(च) लछिमन हूँ यह मरमु न जाना।
जो कछु चरित रचा भगवाना॥
(छ) तेहि कौतुक कर मरम न काहू।
जाना अनुज न मात पिताहू॥

अतः इन अनेक प्रमाणों के द्वारा स्पष्ट सिद्ध है कि प्रभु श्रीराम के मर्म को कोई नहीं जानता है। तो फिर केवट प्रभु के मर्म को कैसे जानता है?

विधि हरि हर सुर सिद्ध घनेरा, कोउ न जान मर्म प्रभु केरा।
अधम जात केवट किमि जाना, कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥

समाधान—प्रश्न सुन्दर है, परन्तु गोस्वामीजी ने जहां यह लिखा है कि प्रभु के मर्म को कोई नहीं जानता है वहां स्थल स्थल पर आपने यह भी स्पष्ट शब्दों में बताया है कि सच्चे भक्त अथवा जिन पर प्रभु की कृपा होती है और जिन्हें श्रीप्रभु ही स्वयं जनाना चाहें वे उनके मर्म को जान सकते हैं, यथा—

तुम्हरे भजन प्रभाव अघारी। जानउं महिमा कछुक तुम्हारी।

× × ×

यह सब चरित जान पै सोई। जा पर कृपा राम की होई।

× × ×

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई।

साथ ही यहां पर एक ऐसी घटना हो गई है जिससे केवट प्रभु को जान गया है और कहता है कि

"तुम्हार मर्म मैं जाना"

जिस समय मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रघुनन्दनजी तथा श्री जानकी जी ने रात्रि के समय शृङ्गबेरपुर में विश्राम किया तो निषाद राज गुह ने प्रभु के चारों ओर पहरा बैठा दिया, यथा—

गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती॥

प्रीति और प्रतीति शब्दों से ज्ञात होता है कि अपने पुत्रों

तथा मित्रों को पहरे पर बैठाया क्योंकि पुत्र में प्रीति और मित्र में प्रतीत होती है, यथा—

सुत की प्रीति प्रतीति मित्र की। (विनय पत्रिका)

और वह स्वयं जहां श्रीशेषावतार लक्ष्मणजी महाराज बैठे थे। वहां जाकर बैठा। श्री सीता जी को पृथ्वी पर सोते देख कर निषाद राज के हृदय को बड़ा दुःख हुआ, शरीर रोमांचित हो गया तथा नेत्रों से अश्रु धारा बह चली। निषाद को इस तरह दुखित देख कर श्री लक्ष्मण जी ने निषाद को समझाते हुये श्रीप्रभु के वास्तविक रूप का ज्ञान कराया। यथा—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा, अविगत अलख अनादि अनूपा।
सकल विकार रहित गत भेदा, कह नित नेति निरूपहि वेदा॥
भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
कर चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल॥

सौभाग्यवश जहां पर श्री लक्ष्मण जी निषादराज को उपदेश कर रहे थे वहीं केवट का पहरा था और निषादराज के साथ साथ उसने भी इन उपदेशों को सुना। और जब प्रात काल श्री रामचन्द्र गंगाजी के तट पर जाकर उससे नाव मांगने लगे तो वह बोला, "हे नाथ! रात्रि में आपके भ्राता जी के ही द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि आप साधारण राजकुमार नहीं वरन 'परमारथ रूपा ब्रह्म" हैं। अत· वह कहता है कि—

तुम्हार मर्म मैं जाना।

जदपि राम कर अमित प्रभावा, विधि हरि हर कोउ पार न पावा।
तदपि कहेउ तुलसी अस गाई, जापर कृपा करहि रघुराई।
सो जानइ कछु राम प्रभाऊ, लोरहुँ वेद विदित सब काऊ।
केवट परम भक्त प्रभु केरा, कर्म वचन मन सों प्रभु चेरा।
भजइ मुनिश्वर श्री भगवाना, ताते कहइ मरम मैं जाना॥

शङ्का—यह तो पता चला कि प्रभु की कृपा अथवा भक्ति के प्रभाव से केवट प्रभु के मर्म को जान रहा है किन्तु वह कौनसा मर्म है जिसे जान कर वह नाव लाने से इनकार कर रहा है।

केवट कथन मरम प्रभु केरा। जानत जाते न लावत बेरा ॥
केहि कारन मो करइ बहाना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना ॥

समाधान—

पहिला भाव

राम जबहिं सुरसरि तट गयऊ। तब उर महँ अस सोचत भयऊ ॥
केवट मोर मर्म नहिं पावें। सुरसरि पार मोहि पहुँचावें ॥
प्रभु चतुराइ गयउ सो जाना। कहइ तुम्हार मर्म मैं जाना ॥

दूसरा भाव

दीन दयालु नाव जब मांगा। केवट हृदय विचारन लागा ॥
कहहु सत्य सब मैं रघुबीरा। दरस लागि रह्यो सुरसरि तीरा ॥
तुम मोते निज भेद छिपाई। जान चहहु प्रभु करि चतुराई ॥
तुम समझहु यह मोहि नहिं जाना। कहइ तुम्हार मर्म मैं जाना ॥

श्री हरि की कृपा में दो मुख्य बाधायें हैं एक कामिनी, तथा एक कंचन। श्री रहीम कवि ने भी कहा है कि—

रहिमन यहि जग आइके कोउ न भयउ समरत्थ।
एक कंचन एक कुचन पै, जो न पसारेउ हत्थ ॥

परम भक्त केवट ने इन दोनों का त्याग किया है। यथा—

तीसरा भाव

तुम्हरे मन मोहि नाव चढ़इहै। बिनु पहिचाने चरन नहिं धोइहै ॥
पग रज पड़त तरनि उड़िजाई। तरनि ते घरनि तुरत होइ जाई ॥

सुन्दर नारि देखि बौरइहैं। मोर भजन तजि कामहि भजिहैं॥
जानहु मो कहँ निपट अयाना। कहउ तुम्हार मरम मैं जाना॥
इस तरह कामिनि का त्याग है।

चौथा भाव

तुम समझहु, यह निपट गवाँरा। मो कहँ जानत राज कुमारा॥
राजकुमार जानि मोते डरिहैं। नाव चढ़ाय पार मोहि करिहैं॥
तब येहि कहँ कछु दै उतराई। कंचन पाइ काँच होइ जाई॥
पाय रतन माया में भुलइहैं। मोर भजन यह तुरतहिं तजिहैं॥
मो मन चलइ न तोर बहाना। कहउ तुम्हार मरम मैं जाना॥
इस तरह कंचन को ठुकराया।

पांचवां भाव

मो कहँ अधम जानि रघुराई। जान चहहु प्रभु मोते छिपाई॥
जन एहि भाँति अधमतें घिनइहो। तब केहि विधि जग जमरिस्वहिहो
गौतम नारि नाथ किमि तारी। दीन्ह कछुकतोहि कहहु विचारी॥
कहै शास्त्र सब वेद पुराना। अधम उधारन राम सुजाना॥
तब केहि हेतु सुनहु जिय आना। कहउ तुम्हार मरम मैं जाना॥

छठा भाव

नाथ मर्म तव जानउ अहऊँ। जो जिय गुनहु सुनहु मैं कहऊँ॥
तुम्हरे मन एक कौतुक करिहौं। चरन धूरि मे तरनि उड़इहौं॥
हाँहि अनन्द हँसहि सियभाई। विपिन रम्य सब देहि भुलाई॥
नाथ तोर यह कौतुक होईहै। सुनहु मोर पुनु जो गति होइहै॥
पग रज पड़त तरनि उड़ि जाई। बाट परै मोरि नाव उड़ाई॥
यह पतिपालौं सब परिवारू। नहि जानों कछु और करारू॥
कहहु नाथ किमि नारि तुम्हरहौं। सब परिवार अन्न बिनु मरिहौं॥
बालक तदपि मरहिं बिनु दाना। कहउ तुम्हार मर्म मैं जाना॥

सातवां भाव

औरो एक सुनहु दुख भारी। जब होइहिं मो कहँ दुखारी ॥
होय कलह नित हे भगवाना। कहहु तुम्हार मरम मैं जाना ॥

आठवां भाव

आज लखन की एक न चलिहै। नाथ,चरन अब देतहिं बनिहै ॥
करहु पूर्ण प्रण जो तुम ठाना। कहहु तुम्हार मर्म मैं जाना ॥

कथा—

एक समय जब श्रीप्रभु क्षीरसागर में श्रीशेष शैय्या पर शयन कर रहे थे तो क्षीरसागर का एक कमठ (कछुआ) श्रीसरकार के चरणों को स्पर्श करने की अभिलाषा से शेष जी पर चढ़ने लगा। परन्तु ज्योंही वह चढ़ने का प्रयास करता त्योंही शेष जी अपना शरीर हिला देते और वह दीन कछुआ सागर में गिर पड़ता। इस तरह उसने अनेक बार प्रयास किया और बार बार शेष जी के अंग हिला देने के कारण वह गिर पड़ता। श्रीप्रभु उस कछुए की दृढ़ निष्ठा और सच्ची प्रीति देख कर परम प्रसन्न हुए और उन्होंने वरदान दिया कि "त्रेता के अन्त में जब मैं श्री रामावतार धारण करूंगा तो उस समय तुम गंगा घाट के केवट बनोगे, उस समय में तुम्हें स्वयं जाकर अपना चरण देकर तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूंगा।" इस समय तो शेष बाधा कर रहे हैं पर उस समय तुम हमारे वरदान के कारण बिना परिश्रम के चरण प्राप्त करोगे "आज केवट प्रभु को स्मरण दिला रहा है कि "नाथ जिस तरह उस समय लक्ष्मण जी ने (शेष जी), बदन हिलाकर मेरी अभिलाषा पूर्ति में बाधा डाली थी उसी तरह आज भी यह क्रोध से वदन हिला रहे हैं'। '(बरू तीर मारहिं लखन)' किन्तु प्रभु आज इनकी न चल सकेगी क्यों कि आप तो बचन दे चुके हैं, अतः अपने वचन को पूर्ण कीजिए।

नौवां भाव

मैं जानी प्रभु की चतुराई। माँगहु नाव न परत लखाई॥
जासु नाम सुमिर संसारा। उतरहिं नर भव सिन्धु अपारा॥
नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं। सो चढ़ि नाव पैं पारहिं जाहीं॥
जानहु मोकहु वनिसम धीरा। कियेहु जगत तिहुँ पगते थोरा॥
मानहु निज यहँ परम सयाना। यहइ तुम्हार मरम मैं जाना॥

दसवाँ भाव

जो प्रभु अवसि पारगा चहहु। मोहि पद पद्म पखारन कहहू॥
जो तुम तनहुभनो नहिं आना। सहज उपाय नाथ मैं जाना॥
कथा—

निर्दोष श्रवणकुमार की हत्या के पाप से चक्रवर्ती महाराज श्रीदशरथजी का सर्वांग काला पड़ गया था आप महल में छिपे रहे थे। आपने श्रीवशिष्ठ गुरुदेव से इसका प्रायश्चित पूछा तो मुनिराज ने बताया है कि तुम पीपल के वृक्ष के सूखे खोड में बैठो और तुम्हारे चारों तरफ प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित की जाय। अग्नि शान्त होने पर तुम बाहर निकलो तो तुम्हारा शरीर पुन पहले की तरह विमल हो जायगा। महाराज इस कठिन प्रायश्चित के करने का साहस न कर सके। कुछ दिनों के बाद श्रीवशिष्ठ जी के एक पुत्र से महाराज ने अपना कष्ट सुनाया तो उन्होंने एक तुलसी पत्र में राम लिख कर उसे एक कलश जल में मिला कर महाराज को स्नान कराया। जब से स्नान करते ही श्री महाराज का शरीर बिलकुल स्वच्छ हो गया। उन्हों ने मुनि के पुत्र को बहुत धन्यवाद दिया और दूसरे दिन महाराज दरबार पहुँचे। श्रीवशिष्ठ जी को बड़ा आश्चर्य हुआ उन्होंने पूछा कि तुम ने क्या उपाय किया? तब महाराज ने सारी बातें सुना दीं। मुनि को यह सुन कर बहुत क्रोध हुआ कि उस

दुष्ट ने इस साधारण कार्य के लिए श्रीभगवन्नाम का प्रयोग किया उसने श्री नाम महाराज का महत्व बिल्कुल नहीं जाना। और वशिष्ठ ने अपने पुत्र को शाप दिया कि तू जंगली होजा। पिता के शाप से वह निषाद बन गया और आज गंगा तटपर उपस्थित है वह कह रहा है कि प्रभु आप के पिताजी को मैंने आप के नाम के प्रभाव से पापमुक्त कर दिया था

अत.—"सहज उपाय नाथ मैं जाना।"

कहे शास्त्र सत वेद पुराना। राम ते अधिक राम गुन गाना॥
कोटि जन्म संचित अघधामा। छन महँ नास करे तव नामा॥
ताते नाथ बनैं अपनाना। कहइ तुम्हार मर्म मैं जाना॥

ग्यारहवां भाव

तुमहिं नाथ हिय करहु विचारा। सबहि सोच किमि मिलइ अहारा॥
आवत यहि तट पथिक अपारा। विप्र साधु मुनि राजकुमारा॥
यही नाव पर सबहिं चढ़ाई। पार करों नित हे रघुराई॥
होइ प्रसन्न देइहौं दुइ चारा। नाव चढ़ाइ करौं यदि पारा॥
सो दुइ चार कहहु का करिहौं। नाथ रहे तो जन्म भरि भरिहौं॥
जो उड़ि जाय नाव का करिहौं। हौं गरीब किमि दूसर लैइहौं॥
पुनि मो कहँ पाछे पछताना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना॥

बारहवां भाव

पार जान जो चहहु गुसाईं। सुनहु कहौं एक सुगम उपाई॥
इतते कछुक दूर रघुबीरा। कटिलौं अहइ तहाँ प्रभु नीरा॥
यथा नाव माँगउ तुम देवा। छन मह पार होव बिनु सेवा॥
देउँ दिखाय चलहु भगवाना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना॥

हमारे इस भाव के अनुरूप पूज्य श्रीगोस्वामी जी महाराज की कवितावली का एक सवैया इस प्रकार है:—

यहि घाट ते थोरिक दूर अहै कटि लौं जल थाह दिखाइहौं जू।
परसे पग धूरि तरै तरनी घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू।
तुलसी अवलम्ब न और कछू लरिका केहि भाँति जियाइहौं जू।
बरु मारिय मोहि बिना पग धोये हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू।

इस भाव के अनुरूप श्री सूरसागर में एक बड़ा ही मनोहर पद है। यथा.—

मेरी नौका जनि चढ़ौ त्रिभुवन पति राई।
मो देखत पाहन उड़े मेरी काठ की नाई॥
मैं खेवी हौं पार को तुम उलटि मंगाई।
मेरो जिय यों ही डरे मति होइ सिलाई॥
मैं निर्बल मेरे बल नहीं जो और गढ़ाऊं।
मेरो कुटुम्ब याही लग्यो ऐसी कहं पाऊं॥
मैं निरधन मेरे धन नहीं परिवार घनेरो।
सेमर ढाक पलास काटि बांधो तुम बेरो॥
बार बार श्रीपति कहैं केवट नहीं मानै।
मन परतीति न आवै उड़ती ही जानै॥
नियरें ही जल थाह है चलो तुम्हैं बताऊं।
सूरदास की बिनती नाके पहुँचाऊं॥

तेरहवाँ भाव

तुम जिय डरहु मोहि चीन्ह जाने। ईश ईश कहि के गोहराने॥
सब पापी जन अस सुधि पाई। आवहिं दलन टोरि एहि ठाई॥
चौदह वर्ष यहीं अटकाई। धोवहिं चरन अघी समुदाई॥
अंस जिय गुनहु तो देर न करहू। मोहि पदपद्म पखारन कहहू॥
मोहि ताहि छाड़ि जान नहिं आना। कहइ तुम्हार मरन मैं जाना॥

चौदहवां भाव

औरो मर्म एक तब कहऊं। जेहि कारन मैं पार न करऊं॥
तुम निज हठते बनहि सिधाए। भूपति तुम कहँ बन न पठाये॥
कहेउ सचिव सन अस नर राई। मैं न जिअब जग बिनु रघुराई॥
बन देखाय सुरसरि अन्हवाई। आनहु फेरि सीय दोउ भाई॥
नाव चढ़ाई पार तोहि करिहौं। अवधनाथ के कोप में पड़िहौं॥
जाहु लौटि गृह हे भगवाना। कहइ तुम्हार मर्म मैं जाना॥

चरन कमल रज कहुँ सब कहई।
मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई।
पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई।
बाट परे मोरि नाव उड़ाई॥
एहि प्रतिपालउँ सब परिवारू।
नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू।
मोहि पद पद्म पखरान कहहू॥

शब्दार्थ—तरनिउ=तरणी भी, नौकाभी। घरनी=घरवाली, नारी। बाट=राह मार्ग। बाट परई=यह लोकोक्ति है। अर्थात्—रास्तामारा जाना, हरण होना। कबारू=उद्यम व्यापार रोजगार।

अर्थ—हे नाथ आपके चरण कमलों के रज के विषय में सब का कहना है यह मनुष्य बनाने की कोई जड़ी है। जब शिला (पत्थर) को छूते ही सुन्दर स्त्री हो गई तो फिर लकड़ी पत्थर से तो कठोर नहीं होती, अगर मेरी नौका भी मुनि पत्नी होकर उड़ जायगी तो मेरी जीविका ही मारी जायगी इसी नाव के द्वारा मैं समस्त कुटुम्ब का भरन पोषण करता हूँ और कोई दूसरा रोजगार नहीं जानता। हे नाथ यदि आपको पार अवश्य ही जाना है तो मुझे चरण कमलों को धोने की आज्ञा दें।

इसी विषय को गोस्वामीजी महाराज ने कवितावली में भी बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है—

पात भरी सहरी सकल सुत बारे बारे
केवट की जाति कछू वेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागो राजा जी,
हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं॥
गोतम की घरनी ज्यों तरनी तरेगी मेरी,
प्रभु सो निषाद ह्वै के वाद ना बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईश राम रावरे से सांची कहौं,
बिना पग धोये नाथ नाव ना चढ़ाइहौं॥

भक्त शिरोमणि श्री सूरदासजी भी इस पर एक पद बड़ा ही मनोहर कहते हैं। यथा—

नौका नाहीं हौं लैं आऊं।
प्रगट प्रताप चरन को देखौं ताहि कहाँ लौं गाऊँ॥
कृपासिन्धु पै केवट आयो कंपत करत जु बात।
चरन परसि पापान उड़त है मति बेरी उड़ि जात॥

जो यह प्रभू होय काहू की दारु स्वरूप धरे।
छूटे देह जाई सरिता तजि पग सों परस करे॥
मेरी सकल जीविका यामें रघुपति मुक्त न कीजें।
सूरदास चढ़ौ प्रभु पाछे रेनु पखारन दीजै॥

तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई—यदि श्री प्रभु यह कहें कि शिला को तो शाप था, तो केवट कहता है कि हो सकता है यह नौका की लकड़ी भी किसी मुनि के शाप से ही काष्ठ हुई हो—

मुनि घरनी होइ जाही—का दूसरा भाव कि यदि केवट नारि होती तो कोई डर नहीं पर यह तो मुनि नारि हो जायगी यथा आनन्द रामायणे।

अस्ति मे गृहिणी गेहे किंकरोम्यपरां स्त्रियम्।

पद कमल धोइ चढ़ाय नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब सांची कहौं॥
बरु तीर मारहि लखन पै जब लगि न पाँय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं॥

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥

अर्थ—हे प्रभो! मैं आपसे पार उतारने की मजदूरी नहीं चाहता पर सरकार के श्री चरन-कमलों को धोकर ही नौका पर चढ़ाऊंगा। हे श्रीराम! मैं आपकी तथा आपके पिता श्रीदशरथजी महाराज की कसम करके यह सत्य कह रहा हूँ कि मेरा वध भले

ही कर दूँ किन्तु जब तक आपके श्री चरणों को न धोलूंगा तब तक हे तुलसीदास के स्वामी, हे कृपालु मैं आपको नाव पर चढ़ा कर नहीं ले जाने का। केवट के इस अटपटे किन्तु प्रेम से पगे हुए वचन को सुन कर करुणानिधान श्रीरामजी, जानकीजी तथा लक्ष्मणजी की ओर देखकर हँस पड़े।

पद कमल धोय चढ़ाय नाव—भाव कि चरणों को धोने के बाद फिर आपको भूमि पर चरण न रखने दूंगा क्योंकि पृथ्वी पर चरण धरने से पुनः धूलि लग जायगी अतः उठाकर नाव पर सवार कराऊंगा।

पद कमल धोय का दूसरा भाव कि यहां पर श्रीगोस्वामीजी ने श्रीप्रभु के चरणों की उपमा प्रथम तो कमल से दी यथा—

चरण-कमल रज कँह सब कहई।
मानुप करनि मूरि कछु अहई॥

पुनः अपने पद्म से उपमा दी यथा—

जो प्रभु अवसि पार गा चहहू।
मोहि पद पद्म पखारन कहहू॥

अन्त में आप पुनः कमल से उपमा देते हैं, यथा:—

पद कमल धोय चढ़ाय नाव ....।

भाव यह कि केवट कहता है आपके कमल के समान लाल चरण गङ्गाजी के श्वेत रजकण से पद्म अर्थात् श्वेत हो गये। मैं उन्हें धोकर पुनः कमल बना दूंगा। (यह भाव लेखक को मानस मर्मज्ञ सेठ श्री वल्लभदासजी द्वारा प्राप्त हुआ है)

न नाथ उतराई चहों—का भाव कि एक पेशा वाले अपने पेशा वाले से मजदूरी नहीं लिया करते तो मैं कैसे लूंगा, यथा—

मेरो जाति पाति न न्यारी तिहारी नाथ,
केवट के कर्म एक नीकी कर विचारिये।
तुम तो उतारत भव सागर परमारथ जानि,
सरिता उतारि हम कुटुम्ब दिन गुजारिये॥
नाई से नाई लेत धोबी न धुलाई देत,
देके उतराई मेरी जात न बिगारिये।
ऐसी आशानाई जान पार तुमको उतार दीन्ह,
जाऊँ जब तिहारे घाट पार मोको भी उतारिये॥

वस्तु तीर मारहि लषन पै—जब केवट ने श्रीरामजी एवं दशरथजी तक की सौगन्द की तो इनकी इस ढिठाई पर लक्ष्मण जी क्रोधित होकर अपने बाणों की ओर देखने लगे, यह देखकर केवट श्रीलक्ष्मणजी से कहता है कि आप भले ही मुझे बाणों से मार दें।

केवट के इन वचनों से उसकी दृढ़ निष्ठा का पता चलता है। वास्तव में अपनी आन पर मर मिटने वाला ही धन्य है। एक उर्दू के कवि ने कितना सुन्दर लिखा है कि—

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये।
जीता है वह जो मरता है निज आन के लिये॥

एक कवि कहता है कि—

बैठे हैं तेरे दर पै तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्ल ही हो जायगा या मरके उठेंगे॥

इसे ही कहते दृढ़संकल्प, ऐसे ही प्रेमियों का यह भाव होता है कि—

डट कर खड़ा है खोफ से खाली जहान में।
तसकीन दिल परी है मेरे दिल मे आन में॥

संचे जमा मंका मेरे पैर गिरत सग ।
मैं कैसे आसकूं हूँ कैदे बयान में ॥
शब हो हवा हो धूप हो तूफां हो छेड़ छाड़ ।
जंगल के पेड़ भत्र इन्हें लाते हैं ध्यान में ॥
नर्दिशसे रोजगारके हिल जाय जिसका दिल ।
इन्सान होके कम है दरख्तों में शान में ॥

इसी प्रेम और दृढ़ निष्ठा के बन्धन में बंधकर श्रीप्रभु स्वयं खिंचकर आ जाते हैं, यथा—

थामे हुए कलेजे को आयेंगे आपमे ।
मानेंगे जब दिल में भला क्यों अमरन ॥
वह कौनसा उकदा है जो वा हो नहीं सकता ।
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता ॥
कीड़ा जरा सा और वह पत्थर में घर करे ।
इन्सान वह क्या न जो दिले दिलबर में घर करे ॥

पुनः-तोते को पढ़ावन में गनिका ने बांध लियो,
बांध लियो कुञ्जर ने प्रेम के पुकारन में ।
मुट्ठी भर चावल में सुदामा ने बांध लियो,
कुब्जा ने चन्दन औ फूलन के हारन में ॥
माखन के चाखन में गोपियों ने बांध लियो,
छछिया भरि छाछ पै नाचे ब्रजनारिन में ।
भिलनी ने बांध लियो जूठे बेरन में,
द्रोपदी ने बांध लियो ब्रजे चार तारन में ॥

"बहु वीर मारहि लखन" पर एक आधुनिक कवि ने भी बड़ा सुन्दर लिखा है कि—

इशारा आप के भाई का होता है ये वाणों से ।
कि धन्वा से निकल कर आके मिल केवट के प्राणों से ॥
मगर मुझ को नहीं यह डर कि मर जाऊंगा हे भगवन ।
मुझे तो हर्ष है अन्तिम समय तर जाऊंगा भगवन ॥
कहाँ तक़दीर ऐसी है पासा ठीक पड़ जावे ।
कि दर्शन आप का करते पखेरू प्राण उड़ जावे ॥
किया करते हैं जोगी जोग साधन किस लिये हर दम ।
तपस्वी फूंकते रहते हैं तन मन किस लिये हर दम ॥
विरागी लोग भी किस लाभ से वन वन भटकते हैं ।
महा त्यागी भी किस आसा की सीमा पर अटकते हैं ।
यही है चाहना उनकी कि निकले प्राण जब तन से ।
तो आंखे तृप्त हो जावें तुम्हारे दिव्य दर्शन से ॥
तो फिर क्यों हाथ से ऐसा समय श्रीमान जाने दूं ।
न क्यों श्रीजानकी जीवन के सन्मुख जान जाने दूं ॥
मरूंगा किस के हाथों से जो श्री रघुवर का प्यारा है ।
मरूंगा किस जगह निर्मल जहां गंगा की धारा है ॥
मरूंगा सामने किन के कि जिनका दास होता हूं ।
मरूंगा किस खता पर पांव करुणा करके धोता हूँ ॥
जो इन पद पंकजों पर प्राण तन खो जायगा केवट ।
तो मर कर भी सदा जग में अमर हो जायगा केवट ॥

———:※:———

तुलसीदास नाथ कृपाल का भाव कि यदि श्रीरामजी कहे कि तुम्हे तो हमारे ही चरण रज से भय है तो मुझे छोड़ दो और

श्री सीता तथा लक्ष्मण को नाव पर चढ़ा कर उतारदो । तो केवट कहता है कि जब तक आप के श्री चरणों को न पखार लूंगा तब तक तुलसी=श्रीजानकी जी, दास=लक्ष्मण जी और नाथ श्रीरामजी तीनों में से किसी को पार न उतारूंगा।

प्रेम लपेटे अटपटे ००। इस पर एक कवि ने एक सुन्दर कविता लिखी है, यथाः—

छोटे छोटे बालक छः सातक हैं आगे पीछे,
केवट की नारि दौरि गंगा तट आई है ।
केवट ने देखा कहा नेकुरी निहारि देखु,
मेरी नैन ज्योति धुंधरोग की सताई है ॥
राघव के पायंन को तरवा निहारें लागि,
"प्रेम कवि" धूरि कहुँ ढूंढे हुँ न पाइ है ।
जीभ लपटाय एड़ि चाटि लीन्ह रावव की,
पोंछ ओढ़नी से कहा हो गई सफाई है ॥

—:※:—

विहंसे करुणा ऐन, का भाव कि केवट के अटपट वचन को सुन कर अप्रसन्न होना चाहिये था किन्तु आप प्रसन्न हुए कारण कि आप दया के धाम हैं। प्रभु के इस विहंसने पर कवितावली में श्री गोस्वामी जी महाराज लिखते हैं कि

जिनको पुनीत वारि शिरसि वहै पुरारि,
त्रिपथ गामिनि यश वेद कहै गाइ के ।
जिनको योगीन्द्र मुनिवृन्द देव देह दमि,

करत विराग जप जोग मन लाइ कैं।
तुलसी जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो से लेत्राइ कैं।
तेई पायं पाइ कै चढ़ाइ नाव धोये बिनु,
ख्वैहौ ना पठावनी के ह्वै हौं न हँसाइ कैं॥

पुनः

रावरे दोष न पायंन को पग धूरि की भूरि प्रभाव महा है।
पाहन ते बन वाहन काठ को कोमल है जल खाइ रहा है।
पावन पायं पखारि कै नाव चढ़ाइ हौं आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवट के वर बैंन हंसे प्रभु जानकी ओर रहा है॥

चितय जानकी लखन तन, श्रीजानकी जी एवं श्री लक्ष्मण जी की ओर देखकर हंसने का भाव है कि देखो जंगल में हमारे कैसे कैसे प्रेमी छिपे पड़े हैं जो हमारे चरण रज को प्राप्त करने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं। लक्ष्मणजी की ओर देख कर हंसने का दूसरा भाव कि तुम क्यों बाणों की ओर देख रहे हो मैं तो इसकी प्रेम भरी बातों से प्रसन्न हूं। सीता जी तथा लक्ष्मणजी की ओर देखने का तीसरा भाव कि प्रभू के बांये चरण पर श्रीजानकी जी का अधिकार है और दांये चरण पर श्री लक्ष्मणजी का। यथा दोहावली—

राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर
ध्यान सकल कल्याण कर सुरतरु तुलसी तोर॥

प्रभु दोनों की ओर देखकर पूछते हैं कि तुम लोगों ने एक एक चरण प्राप्त किया है तो इतना बड़ा अधिकार मिला है, और केवट दोनों चरण माँगता है तो इसे कौनसा पद दें

श्री जानकीजी की ओर देखने का चौथा भाव कि कहीं आप केवट को चरण धोने की आज्ञा देने पर यह जान कर नाराज न हो जावें कि मेरे पिता से तो मुझे लेकर चरण धुलाये और केवट से मुफ्त ही क्यों धुलाया। अतः आप की क्या इच्छा है।

चितय जानकी लखन तन, का एक भाव यह है कि चितै, जान, की यानी भगवान ने केवट के जान अर्थात हृदय की ओर देखा लखन तन अर्थात तन, न,लखा, शरीर की ओर न लखा।

सारांश यह है कि श्रीप्रभु उसकी अटपट बातों को सुनकर इस लिये प्रसन्न हुये कि उसके हृदय के प्रेम की ओर देखा शरीर पर ध्यान न दिया कि शरीर से नीच होकर मुझ से अट पट बातें कर रहा है श्री प्रभु का यही सदा से सुभाव है।

यथा—

रहति न प्रभु चित चूक किये की। कहा करत सौ बार किये की।।
वचन करम से जो बने सो बिगरे परिनाम।
तुलसी मन से जो बने बनी बनाई राम॥
राम सुजान जान जन जी की। रुचि लालसा रहनि सब ही की॥

कृपासिन्धु बोले मुसकाई।
सोइ करु जेहि तव नाव न जाई॥
बेगि आन जल पांय पखारू।
होत बिलम्ब उतारहिं पारू॥
जासु नाम सुमिरत इक बारा।
उतरहिं नर भव सिंधु अपारा॥
सोइ कृपाल केवटहिं निहोरा।
जेहिं जग किये तिहु पग ते थोरा॥

अर्थः—कृपा के सागर श्रीरामजी मुसकराते हुये केवट से बोले कि वही करो जिस से तेरी नाव न जावे अर्थात बनी रहे, शीघ्र जल लाकर पैर धो और पार उतार दे क्यों कि देरी हो रही है जिनके पावन नाम का एक बार स्मरण करने से लोग अथाह भवसागर से पार उतरते हैं और जिन्होंने सम्पूर्ण जगत को तीन डग से भी कम कर लिया वही परम कृपालु श्री रघुनन्दन सरकार गंगा पार जाने के लिये केवट से निहोरा अर्थात विनती कर रहे हैं।

होत विलम्ब उतारहि पारू, का भाव यह है कि विशेष धूप हो जाने पर पैदल चलने में जानकी जी को कष्ट होगा। दूसरा भाव कि विशेष विलम्ब होने से यात्रा में कोई बाधा न उपस्थित हो अत शीघ्र ही पार होकर आगे निकलना चाहते हैं।

'जासु नाम सुमिरत' से नाम की महिमा तथा "जेहि जग किये तिहुँ पग ते थोरा, से रूप की महिमा बताई। पुन जिस तरह बलि पर कृपा, की थी उसी प्रकार केवट से भी चरण धुला कर उस पर कृपा कर रहे हैं अत कृपा कहा है।

उतरहि पारू का एक भाव है यह कि चरणामृत लेकर अपने परिवार तथा पितरों को पार उतारले, तेरे मन की इच्छा पूरी हुई अत विलम्ब मत कर।

पद नख निरखि देवसरि हरषी।
सुनि प्रभु वचन मोह मति करषी॥
केवट राम रजायसु पावा।
पानि कठवता भरि लेइ आवा॥
अति आनन्द उमगि अनुरागा।
चरन सरोज पखारन लागा॥
बरसि सुमन सुर सकल सिहाहीं।
एहि सम पुण्य पुन्ज कोउ नाहीं॥

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार ।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुन मुदित गयउ लेइ पार ॥

अर्थ—श्रीप्रभु के चरण नखों को देखकर गंगाजी को आनन्द हुआ, क्योंकि श्रीगंगाजी की उत्पत्ति नखों से ही है. किन्तु प्रभु के वचनों को सुनकर कि, "होत विलम्ब उतारहु पारु" मोहने बुद्धि को सोच लिया अर्थात् श्री गङ्गाजी को मोह हुआ कि कहीं यह साधारण राजकुमार तो नहीं हैं। श्रीप्रभु की आज्ञा पाकर केवट कठौते में पानी भर लाया और आनन्द से प्रेम में विभोर होकर चरणकमलों को धोने लगा। समस्त देवता आकाश से फूलों की वर्षा करते हुए कहते हैं कि इसके समान पुन्यात्मा दूसरा कोई नहीं है। श्रीचरणों को धोकर और परिवार सहित चरणामृत लेकर अपने पितरों को संसार सागर से प्रथम पार करके तब प्रसन्नता पूर्वक श्रीप्रभु को गङ्गा के पार ले गया।

पानी कठवता भरि ले आया—००। कठवता में पानी लाने से केवट की चतुरता प्रगट होती है। कठौता में लाया जिस में परीक्षा भी हो जायगी। यदि यह उड़ जाय तो कठौता हो जायगा नाव तो बच जायगी। दूसरा भाव कि कठौता मे लाया कठौती में नहीं क्योंकि उसने सोचा कि कठौती से चरण रज स्पर्श होने से तो स्त्री बन जायगी अतः कठौता में लाया कि अगर बने तो पुरुष ही बने स्त्री नहीं। कठौता में पानी लाने का भाव तीसरा यह कि इस समय श्रीप्रभुजी कैकेयी माताजी की आज्ञा वश "तापस वेष विशेष उदासी" हैं। विशेष उदासी कोई धातु छूते

नहीं। पाषाण और काष्ठ ही छूने हैं अतः कठौता में ही पानी लाया।

पानी कठवता भरि लेइ आवा, शंका—श्रीगङ्गाजल की महिमा समस्त पुराणों में विख्यात है। श्री गोस्वामी जी महाराज ने गङ्गाजल को पानी क्यों कहा ? यदि कहें कि गङ्गाजल नहीं लाया झाड़न अथवा कूप से पानी लाया तो यह भी युक्ति,संगत नहीं क्योंकि श्री गोस्वामी जी महाराज कवितावली में बतलाते हैं।

> प्रभु रुख पाइ के बुलाइ बाल घरनिहिं
> बंदि के चरण चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
> छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गङ्गा जू को
> धोइ पांय पीयत पुनीत वारि फेरि फेरि।
> तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर
> बरषें सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।
> बिबुध सनेह सानी बानी असयानी सुनी
> हँसे राघौ जानकी लखन तन हेरि हेरि।

अस्तु कवितावली से यह स्पष्ट है गङ्गाजल ही केवट कठौते में लाया।

समाधान—शंका ठीक है। केवट गङ्गाजल ही लाया था किन्तु उस समय गङ्गाजल साधारण पानी हो ही गया। यही तो गोस्वामी जी महाराज की विशेषता है कि आप स्पष्टवादी और निष्पक्ष समालोचक थे। ऊपर गोस्वामी जी बतलाते हैं कि श्री राम जल ही कहते हैं।

यथाः—

बेगि आनु जल पाँय पखारू। होत बिलम्बु उतारहि पारू ॥

किन्तु प्रभु के वचनों को सुनते ही श्रीगङ्गाजी मोह में पड़ गयीं। तो आप मोहग्रस्त जीवों के लिये श्रीरामचरित मानस में बतलाते हैं कि—

मोह भये सुख सुकृतनसाहीं। ग्यान विराग सकल गुणजाहीं ॥

अतः गंगाजल में मोह के कारण गुण का अभाव हो जाने से इस समय वह साधारण पानी ही है इस लिये गोस्वामीजी महाराज लिखते हैं कि, "पानि कठउता भरि ले आवा"—

पुनः जब केवट को प्रभु के श्रीचरणों को धोते देखकर—

बरषि सुमन सुर सकल सिराहीं। यहि सम पुन्यपुञ्ज कोउ नाहीं ॥

देवताओं के वचनों को सुन कर श्री गंगाजी का मोह दूर हो गया तो अब श्री गोस्वामीजी पानी के स्थान पर जल कहते हैं यथा—

पद पखारि जल पान करि आपु सहित परिवार।

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता।
सीय राम गुह लखन समेता ॥
केवट उतरि दण्डवत कीन्हा।
प्रभुहि सकुच एहि नहिं कुछ दीन्हा ॥

अर्थः—गुह निषादराज एवं श्री लक्ष्मण सहित श्रीसीता राम जी नौका से उतर कर गंगाजी की रेत अर्थात् बालू पर खड़े हुये। बाद में केवट ने उतर कर दण्डवत् किया। उसे दण्डवत् करते देख कर प्रभु को हृदय में संकोच हुआ कि इसे कुछ उतराई नहीं दी।

प्रभुहि सकुचि का भाव यह है कि यह तो श्री रघुनाथजी का सदा से स्वभाव है कि आप भक्त को सब कुछ देकर भी समझते हैं कि कुछ न दिया यथा—

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिये दस माथ।
सोइ संपदा विभीषनहिं सकुच दीन्ह रघुनाथ॥

क्यों कि प्रभु ने सोचा कि मैं दे क्या रहा हूँ। यह लंका तो जब इसके भाई की है तो इसी की हुई और फिर हनुमानजी जला भी चुके हैं।

धन्य है प्रभु की दयालुता। केवट पितृगण तथा परिवार सहित मुक्त हुआ। पर प्रभु तो इसे कुछ नहीं समझते हैं।

पिय हिय की सिय जाननिहारी।
मनि मुँदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई।
केवट चरन गहे अकुलाई॥

अर्थः—पति के मन की बात जाननेवाली सीता जी ने प्रसन्न चित्त से मनि की अंगूठी अपनी अंगुली से उतारी। कृपालु प्रभु केवट से बोले कि यह अपनी मजदूरी लो यह सुनते ही केवट

व्याकुल होकर सरकार के चरणों को पकड़ कर बोला । !'

"पिय हिय की सिय जाननिहारी" का भाव कि श्रीजानकीजी प्रभु के मन की बात जान गयीं क्योंकि श्री रामजी का मन तो सदैव श्रीजानकीजी के ही पास रहता है ।

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एक मनु मोरा ॥
सो मनुसदा रहत ताहिपाहीं । जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं ॥

मन मुदित का भाव कि व्याह के बाद मिथिलापुरी से विदा होते समय श्री जानकी जी को श्री माता जी ने यह आज्ञा दी थी कि—

सास ससुर गुर सेवा करेहु । पति रुख लखि आयुसअनुसरेहु ॥

उसे पालन करने का सुअवसर अनायास मिल गया । इस चरित से श्री सीताजी ने संसार की भूली हुई स्त्रियों को कितना सुन्दर उपदेश दिया आज कल तो बहुत सी स्त्रियां ऐसी परिस्थिति में पति पर जल ही उठती है कि सब तो गवां ही दिया अब बची बचाई भी लिये लेते हैं ।

"केवट चरण गहे अकुलाई ।" का भाव कि प्रभु आप अपने भक्तों को स्वयं क्यों माया में लगाना चाहते हैं इसी प्रकार जिस समय लंकापुरी से श्रीजानकी जीका संदेशा लाकर श्रीहनुमानजी महाराज ने श्रीप्रभु को सुनाया और श्रीप्रभु प्रसन्न होकर बोले कि
सुनु कपितोहि समान उपकारी । नहिं कोउसुर नरमुनितनुधारी ॥
प्रति उपकार करों का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं । करि विचार देखेउँ मन माहीं ॥

तो प्रभु के वचनों को सुन कर हनुमानजी ने भी दण्डवत कर प्रभु के चरणों को पकड़ लिया यथा—

सुनि प्रभु वचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरण पडेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवन्त॥

नाथ आजु मैं काह न पावा।
मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी।
आजु दीन्ह विधि बनि भलिभूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरे।
दीनदयाल अनुग्रह तोरे॥
फिरती बार मोहि जो देवा।
सो प्रसादु मैं सिर धर लेवा॥

दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियं,
नहिं कछु केवटु लेइ॥
बिदा कीन्ह करुनायतन,
भगति बिमल बरु देइ॥

अर्थ—हे नाथ, मेरे दोष दुख और दरिद्रतारूपी दावानल आजमिट गयो,अत आज मैंने क्या नहीं पाया। अर्थात् जब सभी ताप दूर हो गये तो अब बाकी क्या रहा। मैं अनेक जन्मों बहुत काल, से मजूरी करता रहा पर आज ब्रह्मा न अच्छी और पूरी

मजूरी दे दी, हे दीनदयाल, अब आप की कृपा होने से मुझे अन्य किसी वस्तु की इच्छा नहीं रही, फिर भी लौटती समय जो कुछ आप देंगे वह प्रसाद मैं सिर पर धारण कर लूंगा, अर्थात् ग्रहण कर लूंगा। श्रीप्रभु एवं श्रीसीताजी तथा लक्ष्मण जी ने भी बहुत भाँति आग्रह किया किन्तु जब केवट ने किसी भी प्रकार कुछ स्वीकार न किया। तब करुणा के धाम श्रीरघुनाथजी महाराज ने अपनी अनपायनी निर्मल भक्तिका वरदान देकर केवट को विदा किया।

"मिटे दोष दारिद दावा"। का भाव कि दोष अनेक प्रकार के कर्मों का दुख तीन प्रकार के दैहिक, दैविक, और भौतिक—
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यापा॥

दोष अर्थात् पाप से दुख होता है।

यथा—

करहिं पाप पावहिं दुख, भय रुज शोक वियोग।

दोष दुख मिटे यानी कारण और कार्य दोनों का आप की कृपा से नाश हो गया दुखों में से दरिद्रता का ही नाम दिया। क्योंकि इससे बड़ा कोई दुख नहीं।

यथा—

नहिं दरिद्र सम दुख जगमाहीं। संत मिलन सम सुख कछु नाहीं॥
जल संकोच बिकल भइ मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धन हीना॥

भाव कि आज तक मैं दुख तथा दोष से संतप्त रहा आज आपकी कृपा से ताप दूर हुए।

"अब कछु नाथ न चाहिए मोरे" का भाव कि भक्त को तो केवल सरकार के दर्शन की ही अभिलाषा रहती है। और यह तो मुझे प्राप्त हो ही गया अतः अब मेरी कुछ अभिलाषा नहीं है।

यथाः—

नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। सब पूजे अभिलाष हमारे॥

"फिरती बार मोहि जो देबा" का भाव कि प्रभु को ऋणी बनाये रहता है जिस में फिर इसी घाट पर आवें। और मेरी ही नाव पर उम पार जावें।

"नहिं केवट कछु लेइ" का भाव कि पहले शपथ कर चुका है कि—

पद कमल धोय चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउर आनि दशरथ शपथ सब सांची कहौं॥

अतः नहीं लेता है। यहां दिखाते हैं कि जिस में इतना त्याग होता है कि स्वयं लक्ष्मी के देने पर भी नहीं लेता है उसे ही प्रभु अपनी भक्ति देते हैं। श्रीप्रभु के रहने का स्थान बताते हुए श्री वाल्मीकिजी महाराज अन्तिम स्थान यह बतलाते हैं कि—

जाहि न चाहिअ कबहुं कछु तुम सन सहज सनेह।
बसहु निरन्तर तासु उर सो राउर निज गेह॥

यथार्थ में जब तक हृदय में किसी भी तरह की वासना होती है, तब तक जीव प्रभु की अनपायनी भक्ति एवं सच्चे सुख शांति का अधिकारी नहीं है जहां वासना मिटी कि फिर तो मंगल ही मंगल है।

यथा—

दिल से पकड़ जकड़ है बाहर रगड़ झगड़ है।

दिल से छोड़ आस मुरादें आवे पास ॥

गुजस्तम अज सरे मतलब तमाम शुद मतलब।

अर्थात् मैंने आशा को छोड़ा कि तमाम आशाएं पूरी हो गयीं। यह तो निश्चित है कि जब कोई सूर्य की तरफ मुंह करके चलेगा तो छाया पीछे भागती चली आयेगी और जब छाया को पकड़ने दौड़ेगा तो छाया आगे हटती जायगी।

यथा—

भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम।

अब जो नफरत हम ने की वह बेकरार आने को है ॥

पुनः सौ बार गरज होवे तो धो धो पिये कदम।

क्यों चर्खो मैहरो माह पै मायल हुआ है तूं ॥

सांसारिक पदार्थों की तो बात ही क्या जो स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ की भी इच्छा रखते हैं उन्हें भी मुक्ति मार्ग की प्राप्ति नहीं होती।

करुणायतन का भाव कि आप अपने दास पर किसी कारण वस दया नहीं करते।

यथा—

अस प्रभु दीन बन्धु हरि कारण रहित दयाल।

तुलसिदास सठ तेहि भजु छाँड़ि कपट जंजाल ॥

जो भक्ति देवताओं तथा मुनियों को दुर्लभ है वह केवट को दी। क्योंकि आप करुणा के धाम हैं आप से बढ़ कर किसी की उदारता हो सकती है। श्री गोस्वामी जी विनयपत्रिका में कहते हैं कि—

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिन सेवा जो द्रवे दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥
जो गति जोग बिराग यत्न करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कह प्रभु न बहुत जिय जानी ॥
जो सपति दस सीस अर्प करि रावन सिव पह लीन्हीं।
सो सम्पदा बिभीषण कह अति सकुच सहित हरि दीन्ही ॥
तुलसीदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तो भजु राम काम सब पूरण करैं कृपा निधि तेरो ॥

भक्तराज केवट चरित
कहहिं सुनहिं नर नारि।
तिन के हिय नभ 'इन्दु' इव
बसहिं सदा त्रिसरारि ॥

राम
आदर्श भक्त
विभीषण
'इन्दु'
राम
राम

मानस कथा मण्डल द्वारा प्रकाशित अन्य

पुस्तकें:—

भक्तराज केवट श्री रामचरित मानसान्तर्गत "केवट-अनुराग" प्रसंग का शब्दार्थ, भावार्थ, शंका-समाधान सहित अपूर्व संग्रह।
माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
इस चौपाई के "मर्म" शब्द पर चौपाइयों में चौदह बड़े ही अनूठे भक्तिपूर्ण भाव दिये गये है। मूल्य केवल आठ आना।

भक्तिमयी शवरी शवरीजी का सम्पूर्ण जीवन चरित्र।

मूल्य आठ आना

आदर्श भक्त विभीषण (दो खण्डों में) श्री रामचरित मानस एवं अन्य ग्रन्थों के आधार पर भक्त वर श्री विभीषण का पूर्ण जीवन चरित्र तथा मानस के प्रसंगों की विशद व्याख्या। मूल्य प्रथम खण्ड एक रुपया। द्वितीय खण्ड दो रुपया।

मन मोहन मोहिनी भक्ति रस के पदों का सुन्दर संग्रह।

मूल्य तीन आना।

मानस संकीर्त्तन पद्मावली श्री रामचरित मानस में प्रार्थना की २८ चौपाइयों की स्तुति आदि का सुन्दर संग्रह। मूल्य एक आना।

आदर्श भक्त

विभीषण

प्रथम खण्ड

ार —

मानस मयंक

श्री इन्दुजी गोस्वामी

मानस कथा मण्डल

वृन्दावन

[उत्तर प्रदेश]

प्रथम बार]

१०

[मूल्य १)४०

भूमिका

लेखक:—

[आचार्य पीठाधिपति श्रीस्वामी राघवाचार्यजी महाराज]
बी.ए., बी. एल.

—:※:—

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराघवेन्द्र के चरित्र में कोई भी ऐसा स्थल नहीं मिलता जिसमें भगवत्प्रेमियों को शिक्षा न मिलती हो फिर भूतभावन शंकर के रामचरितमानस की ओर उसकी क्रमागत चर्चा का सर्वतोभावेन अनुसरण करने वाले गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस की यदि यह विशेषता हो तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिस समय भारत की विश्व हितैषिणी संस्कृति और विश्वकल्याणकारी धर्म के अनुगामियों पर मतान्ध शासकों की तलवार चलरही थी, गोस्वामी जी ने उनको उद्धार का मार्ग प्रदर्शित करने के लिये ही हिन्दी भाषा में मानस रस उपस्थित किया था। कहना न होगा कि गोस्वामी जी इस उद्देश्य को पूर्ण करने में कृतकार्य हुए ही साथ ही हिन्दू समाज ने भी मानस की सहायता से राष्ट्रीय आदर्श का ही ज्ञान नहीं प्राप्त किया

अपितु लौकिक अभ्युदय एवं पारलौकिक श्रेय का मार्ग भी सुलभ कर लिया। वर्तमान काल में पराधीनता के बन्धन में मुक्ति पाने के बाद मानस उस अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति कर रहा है, जिसके बिना स्वतन्त्रता का पथ प्रशस्त नहीं हो सकता।

मानस का विषय है रामचरित्र। इसमें तनिक भी संदेह नहीं, परन्तु श्रीराम के चरित्र के साथ उनके सम्पर्क में आने वालों का वृत्तान्त भी तो मानस में वर्णित है। इन वृत्तान्तों का एक एक वृत्त शिक्षा से परिपूर्ण है। ध्यान रहे कि श्रीराम के चरित्र से जो शिक्षा मिलती है उसी की पुष्टि इन वृत्तान्तों से होती है। इस तथ्य के हृदयगम होते ही रामायण की वह कुञ्जी मिल जाती है जिसके द्वारा सर्वतन्त्र सिद्धान्त का साक्षात्कार किया जा सकता है।

यह पुस्तक इसी का एक उदाहरण है। 'इन्दु' जी ने "आदर्श भक्त विभीषण" लिखकर यह प्रमाणित करने का सफल प्रयत्न किया है कि महात्मा विभीषण का पवित्र चरित्र आदर्श है। पुस्तक पूरी नहीं है, केवल एक खण्ड है। इस खण्ड में लेखक ने भक्तवर विभीषण की भगवच्छरणागति की पृष्ठ भूमि का दिग्दर्शन कराया है। लेखक महोदय ने पुस्तक के आरम्भ में ही बताया है कि रामचरित मानस का सिद्धान्त है राम का मार्ग। "श्रीराम जिस मार्ग से गये हैं वही प्रत्येक मनुष्य का मार्ग है" लेखक के ये शब्द माननीय हैं। विभीषण के प्रसङ्ग में हम राम से क्या सीखें? यही न कि श्रीराम ने विभीषण को शरण दी। श्रीराम ने विश्वामित्र जी से जो चौदह दिन में जो कुछ सीखा वही उनके वनवास के चौदह बरसों का शरण्यव्रत परिपालन है। यह व्रत विभीषण शरणागति में अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचता है। महर्षि विश्वामित्र की शरण्यता छिपी नहीं है उनके

शासन में रह चुकने के पश्चात् यदि राम में शरणागत का भाव न मिलता तो फिर अनुसरण करने की भावना ही राम भक्तों में कैसे जागृत होती। यही राम की शरणागत वत्सलता। रामायण के आरम्भ से अन्त तक इसी की झांकी दिखाई देती है। कोई काण्ड ऐसा नहीं है जहां श्रीराम ने शरणागत को शरण देकर निर्भय न किया हो।

शरणागति पथ के विद्वानों का निर्णय है कि रामायण शरणागति शास्त्र है। इस शास्त्र के शिरोमणि भागवतरत्न हैं "विभीषण,"उनका भक्ति-भाव हनुमद् विभीषण सम्वाद में स्पष्ट तया प्रकट हो जाता है। "इन्दु" जी ने इसके वर्णन करने में कोई कसर नहीं रक्खी। लेखक ने हनुमान जी और विभीषण के भक्ति भाव की समान रूप में तुलना करते हुए तो उस गहराई की थाह लगाई है जिसने विभीषण शरणागति के प्रसंग को लङ्काकाण्ड से सुन्दरकाण्ड में लाकर रख दिया है। सुन्दरकाण्ड में ही विभीषण ने हनुमान को सीता का पता बताया और इसी काण्ड में हनुमान की प्रेरणा विभीषण को राम की शरण तक पहुंचाने में सफल हुई।

पुस्तक के इस खण्ड में तो विभीषण की बताई युक्ति के अनुसार महावीर हनुमान सीता तक ही पहुँच पाये हैं। विभीषण किस प्रकार श्रीराम तक पहुंचेंगे यह तो पाठकों को इसके अगले खण्ड में ही देखने को मिलेगा।

भगवान् श्रीराघवेन्द्र से हमारी प्रार्थना है कि वह "इन्दु" जी की लेखनी को अपनी शरण देकर ऐसी शक्ति प्रदान करें जो मानस के गूढ़ रहस्यों की सरस व्याख्या उपस्थित कर सकें।

बरेली आश्विन वदि ८, २००६ रामाचार्य

प्राक्कथन

श्रीराम चरित मानस हिन्दू जीवन, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू गौरव और हिन्दू कर्त्तव्य का ज्वलंत उदाहरण होने के साथ-साथ मानव जीवन को पवित्रता के उच्च शिखर पर पहुँचाने वाला सीम का त्रैलोक्य वन्द्य मर्यादा, मानव कुटुम्ब में एकता और समानता का मंत्र फूंकने वाला प्रेम भक्ति समन्वित श्री भरत का भ्रातृभाव पवन कुमार श्रीहनुमान का सेवा भाव, जटायू का आत्म-त्याग, लक्ष्मण का भ्रातृ भाव पूर्ण दिव्य सेवा संगीत आदि विख्यात दिव्य आदर्शों का भण्डार है।

श्रीजनक का व्यावहारिक अद्वैतवाद, अयोध्या की संसार दुर्लभ नागरिकता, नील नल का महान शिल्प यज्ञ, भक्तवर विभीषण की अनिवार्य कर्मठता आदि के वर्णन भी कुछ कम अभिनन्दनीय नहीं हैं। साथ ही 'मानस" का संगीतमय काव्य स्रोत, नीतिमय सुन्दर अभिव्यञ्जना, मधुरतम दिव्य भाव प्रवाह, धर्ममय विचार विमर्श, शिल्पमय सुन्दर शब्द विन्यास चित्रमय सालंकार चरित्र-चित्रण, मनमोहक भाषा सौष्ठव, रसात्मक कथा प्रसंग उसके सर्वाधिक विशेषता का कारण है।

श्रीराम चरित मानस का सिद्धान्त है श्रीराम का मार्ग। श्रीराम जिस मार्ग से गये हैं वही प्रत्येक मनुष्य का मार्ग है—

"मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः"।

(श्री मद्० गी०)

श्री राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, उनका हर एक आचरण अपनी शक्ति के अनुसार हमारे लिये अनुकरणीय है। जिस मार्ग पर

समर्पण

अशरण शरण !

"आदर्श भक्त-विभीषण" आपके ही श्री चरणाम्बुजों में समर्पित है, इसलिये कि जब आज से लाखों वर्ष पूर्व महात्मा विभीषण ने सागर तट पर अपने आपको आपके पद कमलों में अर्पित किया था, तो फिर आपके शरणागत विभीषण को किसी भी दूसरे के हाथ सौंपना क्या उनकी भावना को ठेस पहुँचाने के साथ-साथ आपका भी अपमान न होगा ? अस्तु आज पुनः यह "आदर्श भक्त विभीषण" पुस्तक भी आपके ही पाद पंकजों में सादर सभक्ति समर्पित है।

जिस तरह विभीषण ने शरण में आकर—

निसिचर वंश जन्म सुरत्राता, । नाथ दशानन कर मैं भ्राता ॥
सहज पाप प्रिय तामस देहा । यथा उलूकहिं तम पर नेहा" ॥

कह कर अपने दोष गिनाये थे, उसी तरह यह भक्तवर विभीषण पुस्तक भी अनेक दोषों से पूर्ण है, किन्तु आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि भक्त-विभीषण को जिस तरह शरण में स्वीकार करके 'सुनु लंकेश सकल गुण तोरे" का आशीर्वाद दिया था उसी तरह इस "भक्त-विभीषण" पुस्तक को भी अपना कर कृपा करेंगे

आपके भक्तों का दासानुदास—

"इन्दु"

मानस कथा मंडल

वृन्दावन।

॥ प्रस्तावना ॥

प्राचीन काल सतयुग की बात है प्रजापति ब्रह्माजी के एक पुत्र हुए जो ब्रह्मर्षि पुलस्त्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। एक बार मुनिवर पुलस्त्य धर्मानुष्ठान के लिये महागिरि मेरु के निकटवर्ती राजर्षि तृणबिन्दु के आश्रम में गये और वहीं रहने लगे। उस समय अनेक देवता एवं ऋषियों की कन्याएँ आकर कल-कल करती थीं तब श्री पुलस्त्य जी ने कहा - 'कल से जो कन्या मेरे सामने आयेगी, वह गर्भवती हो जायगी।"

मुनि की यह बात सुन कर सब कन्याएं डर गयीं और उस ओर जाना छोड़ दिया। किन्तु राजर्षि तृणबिन्दु की कन्या ने इस शाप को नहीं सुना, अतः दूसरे दिन भी वह बेखटके आकर आश्रम में विचरने लगी। महर्षि के सामने आते ही उसके शरीर पर पीलापन छागया और गर्भ के लक्षण प्रकट होगये। अपने शरीर में यह दोष देख कर वह घबड़ा उठी, और चिन्ता करती हुई पिता के पास आयी।

अपनी कन्या की ऐसी दशा देख मुनि को बड़ी चिन्ता हुई और जब उन्होंने ध्यान लगा कर देखा तो मालुम हुआ कि यह सब कुछ महर्षि पुलस्त्य के ही करने से हुआ है। आत्मज्ञानी मुनि के शाप को जान कर वे राजर्षि अपनी कन्या को साथ ले उनके आश्रम पर गये और पुलस्त्य से बोले—"भगवन्! यह मेरी कन्या अनेक गुणों से विभूषित है और स्वयं ही आप के पास भिक्षा के रूप में उपस्थित हुई है, आप इसे स्वीकार करें। धर्मात्मा राजर्षि

की बात सुन कर महर्षि पुलस्त्य ने उस कन्या को ग्रहण कर लिया। वह कन्या भी अपने गुणों से पति को सन्तुष्ट करती हुई वहीं रहने लगी और कुछ दिनों बाद उसने विश्रवा नामक पुत्र को जन्म दिया, जो तीनों लोकों में विख्यात यशस्वी तथा धर्मात्मा हुआ।

श्री विश्रवा के उत्तम आचरण को देख कर महामुनि भरद्वाज ने अपनी कन्या को जो देवांगना के समान सुन्दर थी, उनके साथ विवाह कर दिया। मुनिवर विश्रवा ने धर्मानुसार भरद्वाज की कन्या का पाणिग्रहण किया और उन्होंने एक अद्भुत एवं पराक्रमी बालक को उत्पन्न किया जो वैश्रवण के नाम से विख्यात हुआ।

कुमार वैश्रवण अर्थात् कुबेर जी ने बड़े होकर कठोर नियमों का पालन करते हुए हजार वर्षों तक बड़ी उग्र तपस्या की। उनकी तपस्या से परम प्रसन्न हो श्री ब्रह्माजी ने उन्हें पुष्पक विमान देकर इन्द्र, वरुण, यम के बाद चौथा लोकपाल (निधिपति) अर्थात् अपार धन राशि का स्वामी बनाया।

ब्रह्मा जी से वरदान प्राप्त कर धनेश वैश्रवण (कुबेर) अपने पिता की आज्ञा से दक्षिण समुद्र के तट पर त्रिकूट नामक पर्वत के शिखर पर बसी लंका नामक विशाल पुरी में जो कि विष्णु के भय से राक्षसों के पाताल में चले जाने से खाली पड़ी हुई थी सुख से निवास करने लगे।

कुछ काल के पश्चात् सुमाली (जो दीर्घ काल से विष्णु के भय से पीड़ित होकर अपने पुत्र पौत्रों के साथ रसातल में निवास कर रहा था) अपनी सुन्दरी कन्या को लेकर रसातल से निकला और पृथ्वी पर विचरने लगा। उस समय उसने तेजस्वी धनेश्वर कुबेर को पुष्पक विमान पर विचरते देखा। उन्हें देख कर सुमाली सोचने लगा—ऐसा ही प्रभावशाली पुत्र मेरी कन्या से

भी उत्पन्न हो तो अच्छा है। ऐसा विचार कर, उसने अपनी पुत्री से जिसका नाम कैकसी था मुनिवर विश्रवा को वरण करने के लिये कहा।

पिता की बात मान कर कैकसी विश्रवा मुनि के पास जाकर उनके सामने नीचा मुँह किये खड़ी हो रही। उस समय मुनिवर विश्रवा सायंकाल का अग्निहोत्र कर रहे थे। पिता के प्रति आदर बुद्धि होने के कारण कन्या ने उस भयंकर वेला का विचार नहीं किया। महर्षि विश्रवा ने पूछा—"भद्रे! तुम किसकी कन्या हो? किस उद्देश्य से तुम्हारा यहाँ आना हुआ है?" मुनि के इस प्रकार पूछने पर कैकसी हाथ जोड़ कर बोली—"महर्षे! मैं पिता की आज्ञा से आपके पास आयी हूँ। मेरा नाम कैकसी है और मैं राक्षसराज सुमाली की कन्या हूँ। बाकी सब बात आप स्वयं जान लें।" यह सुन कर मुनि ने ध्यान लगाया और उसके बाद कहा—"कल्याणी! तुम मुझ से पुत्र पाने की अभिलाषा से आयी हो परन्तु इस दारुण वेला में तुम्हारा मेरे पास आगमन हुआ है; इसलिये तुम्हारे पुत्र क्रूर स्वभाव वाले शरीर से भयंकर होंगे तथा उनका राक्षसों के साथ ही प्रेम होगा। मुनि के वचन सुन कर कैकसी उनके चरणों में गिर कर बोली—"भगवन्! मैं आप से ऐसे दुराचारी पुत्र पाने की अभिलाषा नहीं रखती, अतः आप मुझ पर कृपा करें। कैकसी के ऐसा कहने पर मुनि बोले—"सुन्दरी! तुम्हारा जो सब से छोटा पुत्र होगा, वह मेरे वंश के अनुरूप और धर्मात्मा होगा।

तदनन्तर कुछ काल के बाद कैकसी ने एक अत्यन्त भयानक राक्षस को जन्म दिया उसके दस मस्तक, बीस भुजाएँ, बहुत बड़े मुख और चमकीले बाल थे जो दशग्रीव, रावण आदि नाम से

प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद महाबली विशालकाय कुम्भकरण का जन्म हुआ। तत्पश्चात विकराल मुख वाली शूर्पणखा उत्पन्न हुई। सबके बाद धर्मात्मा विभीषण का जन्म हुआ। इनके जन्म के समय आकाश से फूलों की वर्षा हुई तथा देवताओं ने दुन्दुभी बजायी। विभीषण बचपन से ही धर्मात्मा थे, सदा धर्म में स्थित रहते, स्वाध्याय करते और नियमित आहार करते हुए इन्द्रियों को अपने वश में रखते थे।

बड़ा होने पर रावण अपनी माता की आज्ञा से सिद्धि के लिये गोकर्ण के पवित्र आश्रम पर गया और वहाँ भाइयों सहित तपस्या करने लगा। इनकी तपस्या से प्रसन्न हो श्रीब्रह्माजी ने रावण को विजय दिलाने वाला वर दिया। रावण और कुंभकरण को वरदान देने के बाद भी.—

दोहा — गए विभीषण पास तब कहेउ पुत्र वर मागु।
तेहि मांगेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु।

यह सुनकर प्रजापति बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने विभीषण से कहा—'बेटा' तुम धर्म में स्थित रहने वाले हो अतः तुम जो कुछ चाहते हो वह सब कुछ पूर्ण होगा। राक्षस योनी में उत्पन्न होने पर भी तुम्हारी बुद्धि अधर्म में प्रवृत्त नहीं

नोट — 'भारत' में इनकी जन्म कथा इस प्रकार है कि श्री कुबेर ने अपने पिता की सेवा के लिये तीन बड़ी सुन्दर निशाचर कन्याएँ (पुष्पोत्कटा, मालिनी और राका) दीं। पुष्पोत्कटा से रावण, कुम्भकरण, मालिनी से विभीषण और राका से खर दूषण और शूर्पणखा हुई। श्री गोस्वामी जी श्री रामचरित मानस में भी विभीषण जी को रावण का सौतेला छोटा भाई बताते हैं यथा—

चौ॰ मन्दिर जो रहा धरमरुचि ताषु। भयउ विभीषण बंधु लघु तासु॥
नाम विभीषण जेहि जगु जाना। विष्णु भगत विग्यान निधाना॥

होती, इसलिये मैं तुम्हें अमरत्व भी प्रदान करता हूँ।

प्रजापति श्री ब्रह्मा जी के द्वारा वर प्राप्त कर राक्षसों के साथ रावण त्रिकूट पर्वत पर गया और प्रहस्त को दूत बना कर लंका में भेजते हुए कहा—"प्रहस्त! शीघ्र जाओ और यक्षराज कुबेर से कहो—राजन्! यह लंका पुरी राक्षसों की है, अत यदि आप इसे हमलोगों को लौटा दें तो इसमे हमें प्रसन्नता होगी, और आपके द्वारा धर्म का पालन समझा जायगा।" प्रहस्त ने जाकर जब कुबेर को रावण का संदेश सुनाया तो श्रेष्ठ कुबेर अपने पिता विश्रवा के पास चले गये और उनकी आज्ञानुसार लंका त्याग कर कैलाश पर्वत पर जाकर अपने रहने के लिये अलकापुरी नामक दूसरा नगर बसाया। इधर महाबली रावण ने अपनी सेना, अनुचर तथा भाइयों सहित कुबेर द्वारा त्यागी हुई लंका पुरी में प्रवेश किया। वहाँ पहुँच कर राक्षसों ने रावण का राज्याभिषेक किया और रावण ने—

चौ० जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनी चर कीन्हे॥

रावण ने अपनी बहिन शूर्पणखा का ब्याह दानव राज विद्युज्जिह्व से किया। तदनन्तर दिति के पुत्र 'मय' ने अपनी सुन्दरी कन्या मन्दोदरी से रावण का ब्याह कर दिया। रावण ने विधि-पूर्वक मन्दोदरी का पाणिग्रहण किया। वैरोचन की धेवती वज्रज्वाला को उसने कुम्भकरण की पत्नी बनाया और गंधर्वराज शैलुप की कन्या सरमा का जो बड़ी धर्मज्ञ थी, विभीषण के साथ विवाह कर दिया। इस प्रकार तीनों भाई विवाह करके अपनी अपनी स्त्रियों के साथ लौकिक सुख भोगते हुए वहाँ रहने लगे।

॥श्री हनुमद्विभीषण संवाद॥

प्रमाण एवं प्रयोजन

यद्यपि आदि महाकाव्य वाल्मीकि रामायण एवं अध्यात्म रामायण में इस सम्वाद का उल्लेख नहीं है, किन्तु उपरोक्त सद्ग्रन्थों के इस प्रमाण से—

'वर्जयित्वा महातेजा विभीषण गृहं प्रति' (वा० स० ५४) तथा, 'विभीषणगृहं त्यक्त्वा सर्वं भस्मीकृतं पुरम् (अध्यात्मसर्ग ४) यह निर्णीत है कि श्री हनुमंतलाल जी से श्री विभीषण जी का महल परिचित था।''''' यह कोई कह नहीं सकता कि दूसरे से पूछ ताछ करने पर उन्हें मालूम हुआ था, क्यों कि एक तो यह कि हनुमान जी गुप्त दूत थे इस कारण उनके लिये वैसा करना बिलकुल ही असम्भव था, और दूसरा बात यह है कि इस तरह पूछ ताछ करने का वर्णन भी कहीं उपलब्ध नहीं है। इन सब कारणों से यही अनुमित होता है कि हनुमान् जी विभीषण जी से उनके महल में एकान्त में मिले थे। विभीषण का महल उन्होंने बचा दिया, यदि यह बात स्वीकृत हो चुकी है तो हनुमान जी और विभीषण जी की भेंट के बारे में पूज्य श्री गोस्वामी जी की दृष्टि से ही देखना पड़ेगा।

उपर्युक्त प्रमाणों से भेंट के विषय में संदिग्धता नहीं रही। अब उसका प्रयोजन देखना चाहिये। श्री विभीषण

जो परम भागवत होने के साथ साथ राजनीति में निपुण भी थे।

प्रमाण यथाः—

(क) नाइ माथ करि विनय बहूता । नीति विरोध न मारिअ दूता ॥
(ख) बुध पुरान श्रुति संमत बानी । कही विभीषन नीति बखानी ॥
(ग) तात अनुज तव नीति विभूषण । सो उर धरहु जो कहत विभीषण ॥
(घ) मै जानौं तुम्हारि सब रीती । अति नय निपुण न भाव अनीती ॥

ऐसे राजनीतिज्ञ, बुद्धिमान और चतुर विभीषण भाई के अन्यत्र शत्रु की शरण में कुछ भी पूर्व परिचय बिना एकाएक ही कैसे जा सकते हैं। कुछ न कुछ पूर्व अनुसंधान के बिना ऐसी बात होना एकदम ही अस्वाभाविक दीखती है।

इस अस्वाभाविकता का दोष निकाल देना यही हमारी समझ में हनुमद्विभीषण सम्वाद का मुख्य प्रयोजन है। इस सम्वाद से विभीषण शरणागति की शृङ्खला जुड़ जाती है और कथानक की त्रुटि साफ निकल जाती है। हमारी दृष्टि से तो यह सम्वाद विभीषण शरणागति की प्रस्तावना ही है जिसके कारण इसमें इतनी रमणीयता आ गई। ऐसी रमणीयता लाने वाली कवि कल्पना की प्रशंसा हमारी समझ से हो ही नहीं सकती।
(मा० हं०)

॥ श्री राम ॥

श्री रामचन्द्र चरणौ मनसा स्मरामि श्री रामचन्द्र चरणौ वचसा गृणामि ।
श्री रामचन्द्र चरणौ शिरसा नमामि श्री राम चन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥

आदर्श भक्त विभीषण

[प्रथम खण्ड]

(श्री राम चरित मानसान्तर्गत श्रीहनुमद्‌विभीषण प्रसंग प्रारम्भ)

भवन एक पुनि दीख सुहावा ।
हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा ॥

दो० रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ ।
नव तुलसिका बृन्द तहँ देखि हरष कपिराइ ॥

अर्थ—(लंका प्रवेश करने पर रावण तथा अन्य निशचरों के गृह में ढूंढने पर भी जब श्री हनुमान जी को श्री सीता जी का पता न मिला तब) फिर एक और सुन्दर घर देखा । उसमें एक हरि मंदिर पृथक् बना हुआ था । उस घर पर श्री राम जी के आयुध (धनुषबाण) के चिह्न बने हुए थे । उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती । वहाँ हरे भरे तुलसी के वन समूह देख कर हनुमानजी परम प्रसन्न हुए ।

समानार्थी श्लोक—सुन्दरं भवनं दिव्यं मपश्यन् मारुतात्मजः ।
आसीद्यत्र पृथग्भिन्नं हरिमन्दिर मद्भुतम् ॥
रामायुधैरंकितमेव गेहं,सवर्णनीया खलु यस्य शोभा ।
तत्रैव नूत्न तुलसी समूहं दृष्ट्वाऽतितुष्टो हनुमान्कपीशः ॥
(अगस्त्य रामायणे)

कवित्तः—प्रमुदित परम कपीस देखि गृह सुन्दरताई।
हरि मंदिर तहं भिन्न जासु छवि कहि न सिराई॥
संख चक्र धनु गदा पद्म सर अंकित सोहयो।
रचना रुचिर विचारि कपिन्दहु को मनमोहयो॥
पावन परम अनूप पुहुप वाटिका सुहाई।
बिच बिच तुलसी लसी वृन्द वृन्दन मन भाई॥

भावार्थः—भवन एक पुनि००। इसमें ज्ञान होता है कि श्री विभीषण जी का स्थान रावण के महल के पास ही था। "भवन एक" कहने का यह भाव है कि ऐसा सात्विक स्थान लंका में और दूसरा नहीं है यह एक ही है।

भवन एक पुनि दीख सुहावा—जब तक प्राणी को अपनी बुद्धि, चतुरता एवं शक्ति का भरोसा रहता है तब तक श्री प्रभु की सहायता (कृपा) प्राप्त नहीं होती। जब वह पुरुषार्थ और सब आशा भरोसा छोड़ कर प्रभु की ओर ताकता है तभी वे तुरंत सहायक होते हैं।

जब वालि और सुग्रीव का युद्ध हो रहा था उस समय श्री प्रभु वृक्ष की ओट में थे, यथा
पुनि नाना विधि भई लराई। विटप ओट देखहिं रघुराई॥

और तब तक वालि को नहीं मारा जब तक सुग्रीव अपने छल बल से काम लेता रहा। जब अपनी शक्ति का भरोसा छोड़ कर हृदय से हार गया तब प्रभु की सहायता हुई—यथा—
दो० बहु छल बल सुग्रीव करि हिय हारा भय मानि।
मारा बालिहि राम तब हृदय मांझ सर तानि॥

इसी तरह जिस समय वनवास के प्रथम दिवस रात्रि में भगवान श्रीराम अवध वासी प्रजाजनों को तमसा तट पर सोते हुए छोड़ कर चले गये तो प्रातःकाल होने पर प्रभु को प्राप्त करने की चेष्टा करने लगे, पर श्रीराघवेन्द्र न मिले, यथा—

राम राम कहि चहु दिसि धावहिं ।
रथ कर खोज कतहु नहिं पावहिं ॥

यद्यपि प्रभु का नाम स्मरण कर रहे हैं। जो उनकी प्राप्ति करने का सर्व श्रेष्ठ साधन है। किन्तु अपनी शक्ति का भी इन्हें भरोसा है। (चहु दिसि धावहिं) से यही पता चलता है। और जब इन्होंने अपनी शक्ति का भरोसा छोड़ कर भक्त शिरोमणि श्रीभरत लाल जी महाराज का सहारा लिया तब भगवान को प्राप्त किया।

मिथिला की पुष्प वाटिका में परम पुनीता आदि शक्ति श्रीजानकी जी जब प्रभु के दर्शनों को सखियों के साथ आती है, तो उन्हें भी श्रीराम के दर्शन न मिले क्यों कि—

चितवति चकित चहू दिसि सीता ।
कह गये नृप किशोर मन चीता ॥

क्यों कि श्रीजानकीजी भी पहले अपनी बुद्धि से ही प्रभु को बाग में ढूंढना चाहती थीं। 'चितवति चकित चहूँ दिसि" से यही पता चलता है। पर जब अपनी बुद्धि का सहारा छोड़ा तब जैसे अवध वासियों को प्रभु से श्रीभरतजी ने मिलाया वैसे ही इन्हें सखियों ने प्रभु का दर्शन कराया, यथा--

लता ओट तब सखिन लखाये ।
स्यामल गौर किशोर सुहाये ॥

ठीक इसी तरह श्री हनुमतलालजी लंका में जब तक अपनी चतुरता एवं शक्ति से श्रीसीता रूपी भक्ति को प्राप्त करना चाहते थे तब तक श्रीजानकी इन्हें दिखाई न पड़ीं। यथा—

मंदिर मंदिर प्रति कर सोधा।
देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
गयउ दसानन मंदिर माहीं।
अति विचित्र कहि जात सो नाहीं॥
सयन किये देखा कपि तेही।
मंदिर महुँ न दीखि वैदेही॥

यहाँ तक कि जब रावण के महल को भी सारा छान डाला पर श्रीजानकीजी न मिलीं तो श्री हनुमत लाल की अपनी शक्ति का सहारा जाता रहा। और जैसे ही अपनी बुद्धि का भरोसा छोड़ा कि—भवन एक पुनि दीख सुहावा।

"भवन एक पुनि दीख सुहावा" इस अर्धाली के भवन शब्द पर शङ्का उठा कर कुछ महानुभावों का यह कहना है कि यहाँ श्री गोस्वामी जी ने राक्षसों के मकान को तो मन्दिर लिखा यहाँ तक कि रावण के महल को भी आप मंदिर ही लिखते हैं और भक्तराज विभीषण के महल को भवन कहते हैं। यह प्रयोग कुछ उलटा सा प्रतीत होता है। क्यों कि भवन तो राक्षसों के मकान को और मन्दिर श्रीविभीषणजी के महल को कहना चाहिये।

इसका पहिला समाधान तो यह है कि 'मानस' में मन्दिर शब्द मकानवाही द्योतक है न कि देव मन्दिर का। जहाँ भगवत् मंदिर बनाना होता है वहाँ मन्दिर के साथ महाकवि ने देव, सुर, हरि आदि शब्दों को जोड़ दिया है। यथा—

[क] हाट बाट मन्दिर सुर बासा।
नगर सवारहु चारिउ पासा॥
[ख] नीर नीर देवन्ह के मन्दिर।
चहुँ दिसि तिन्ह के उपवन सुन्दर॥
[ग] हरि मन्दिर तहँ भिन्न बनावा॥ आदि

केवल मंदिर मकान का ही परिचय देता है यथा—

(क) मंदिर मह सब राजहिं रानी।
सोभा सील तेज की खानी॥
(ख) तुलसी भवानीहिं पूजि पुनिपुनि मुदित मन मंदिर चली॥
(ग) करि विनती मंदिर लै आए।
चरन पखारि पलँग बैठाए॥ आदि।

इसका दूसरा समाधान यह है कि अगर कोई मंदिर शब्द पर हठ ही करले तो मंदिर कहते किसे हैं ? मंदिर मे और भवन में अंतर यही है कि मंदिर में श्री सीताराम जी तथा हनुमंत लाल जी आदि का दिव्य विग्रह होता है। यहाँ गोस्वामी जी ने शब्दों का प्रयोग बड़ी ही सावधानी से किया है। जब श्री हनुमंत लाल जी राक्षसों के अथवा रावण के मकान के अन्दर गये तो वह मंदिर हो गया। क्यों कि हनुमत लाल जी के जाते ही श्री सीता राम जी भी वहाँ हो गये। क्यों कि श्री बजरंग के हृदय में श्री रघुनाथ जी निवास करते हैं, यथा—

अस कहि नाइ सबनि कहँ माथा।
चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा॥

और श्री राम जी के हृदय में श्री जानकी जी की मूर्ति है, यथा—

प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुण खानी॥
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिख लीन्ही॥

अतः जब श्री हनुमान जी के साथ साथ श्रीसीताराम की मूर्ति भी है तो क्यों न मंदिर कहा जाय। जब हनुमान जी नहीं हैं तो गोस्वामी जी (जिन्होंने हनुमान की उपस्थिति में रावण के महल को 'दशाननमन्दिर' कहा था) उसे भवन ही लिखते हैं, यथा—

भवन गयउ दसकन्धर इहाँ पिसाचिनि वृन्द।
सीतहिं त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥

और जब श्रीमहावीर पुनः आते हैं तो आप पुनः मंदिर शब्द देते हैं, यथा लङ्का दहन के समय—

चौ० देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ि जाई॥

"हरि मन्दिर तहँ भिन्न बनावा" बताया कि मंदिर घर से पृथक् ही है। और ऐसा होना भी चाहिये पर न तो बहुत दूर हो और न घर के अंदर ही। क्यों कि दूर होने से सेवा पूजा में विक्षेप पड़ेगा, और घर के भीतर सूतक आदि दोषों की संभावना बनी रहती है।

"रामायुध अंकित गृह" का भाव यह है कि जो जिस देवता का उपासक होता है उसका चिह्न धारण करता है, यथा महा शिव संहितायां—

रामायुधाभ्यां तप्ताभ्यां सीताया मुद्रया सह।
अंकिता ये महाप्राज्ञा नित्य मुक्ताश्च मुक्तिदा॥
मुनेऽस्मिन् भारते वर्षे चाप बाणाङ्किता नराः।
स्वपरं कुलं समासं तारयन्ति सुखेन वै॥

"शोभा बरनि न जाइ" का भाव यह है कि गोस्वामीजी का यह नियम है कि भौतिक बाद के वर्णन को इसी तरह से संक्षेप में समाप्त करते हैं, यथा—

भर समीप गिरिजा गृह सोहा।
बरनिन न जाइ देखि मन मोहा॥
बनइ न बरनत नगर निकाई।
जहां जाइ मन तहँइ लुभाई॥

"नव तुलसिका वृन्द" का भाव यह है कि पुष्पों के शत आवरणों से वेष्टित तुलसी की वाटिका लगी थी, जिसमें पवन तनय अपने इष्ट देव श्री सीताराम जी के रहने का स्थान जान कर परम प्रसन्न हुए क्योंकि—

तुलसी वाटिका यत्र पुष्पान्तर शता वृता।
शोभते राघवस्तत्र सीतया सहितः स्वयम्॥

"देखि हरषि कपि राइ" का भाव यह है कि अब तक जितने घरों की शोभा देखी, वह केवल तामसी और राजसी थी पर इस घर की शोभा सात्विकी और राजसी है। इसकी सुन्दरता हरि मंदिर, श्रीरामायुध और तुलसी की वाटिका है, अतः सात्विकी हनुमद्लालजी को इस घर की सात्विकी शोभा देख कर हर्ष अर्थात् आनन्द हुआ।

'कपि राइ' का भाव यह है कि महावीरजी राज्यपाकर कपि राय नहीं हुए, किन्तु भक्ति की श्रेष्ठता से सबके राजा है, ऐसा श्री रामोपासक कपि कुल में दूसरा नहीं है।

शङ्का— रावण शुभ आचरण से चिढ़ता था तथा ऐसे व्यक्तियों को कठिन दण्ड देता था, यथा—

"तेहि देश निकासै बहु विधि त्रासै जो कह वेद पुराना"

तो शंका यह है कि विभीषण को उसने अबतक दण्ड क्यों नहीं दिया?

समाधान— एक मत का कथन है कि जब रावण ने कुबेर पर धावा किया तो उसे जीत कर उसके खजाने में पुष्पक विमान एवं श्रीनृसिंहजी की जवाहरात की मूर्ति लङ्का में ले आया। पर जहां उसने श्रीनृसिंह जी की प्रतिमा रक्खी, रात्रि के समय उसी स्थान में आग लग गयी। इसी तरह रावण जहां जहां प्रतिमा रखता था वहीं वहीं आग लग जाती थी। तब रावण को बड़ी चिंता हुई, क्यों कि रख तो इस लिये नहीं सकता था कि रखा हुआ स्थान अग्नि में भस्मी भूत हो जाता था, और जवाहरातों के मोह से त्याग भी नहीं सकता था। अन्त में उसने विभीषणजी को प्रतिमा रखने को कहा विभीषण ने यह वचन लेकर कि जहां मैं इस मूर्ति को पधराऊँ वहाँ कोई भी निशाचर न जाय, तथा मैं जैसा चाहूँगा वैसा पूजन आदि करूंगा उसमें आप रोक टोक न कर सकेंगे मूर्ति लाकर एक मंदिर की स्थापना कर श्रद्धा प्रेम से पूजन करने लगे। इसलिये रावण विभीषणजी के पूजा-पाठ, हरि स्मरण भजन और हरि मन्दिर एवं उनके मकान पर रामायुध अंकित होने पर भी कुछ रोक टोक न करता था। दूसरा कारण यह है कि विभीषण रावण का वात्सल्य भाजन था। रावण उसे बहुत प्यार करता था और उसके विरोधी मतों को भी सहता था। पारिवारिक मामलों में रावण बड़ा सहन शील था। विभीषण का वैष्णव और रामोपासक होना रावण उसी तरह सहन करता था जैसे आज कल का घोर आर्य समाजी बड़ाभाई अपने कट्टर सनातनी छोटे भाई की मूर्ति पूजा को अपने घर में ही सहन करता है और बाहर सब जगह मूर्ति का खण्डन करता फिरता है।

तीसरा कारण यह है कि रावण जानता है कि भगवन्त पद में अनुराग का वरदान विभीषण को मिला है और मुझे वह

वरदान मिला है कि मनुष्य को छोड़ कर और किसी से मृत्यु न होगी। यदि विभीषण का वरदान मैं भूठा करने का प्रयत्न भी करूं, तो वह भूठा हो ही नहीं सकता और अगर वह असत्य हो जाय तो मुझे भी जो वरदान मिला है वह भी व्यर्थ हो जायगा। वह अच्छी तरह समझता था कि वह भगवद् भजन छोड़ नहीं सकता चाहे जो कुछ मैं करूं। अतएव वह श्रीविभीषणजी को रोकता न था।

लंका निसिचर निकर निवासा।
इहां कहां सज्जन कर वासा॥
मन महँ तरक करे कपि लागा।
तेहीं समय विभीषनु जागा॥

अर्थः—श्री हनुमान् जी मन में विचार करने लगे कि लंका में निश्चर समूह का निवास है यहाँ सज्जन का वास कहाँ? उसी समय विभीषण जी जगे।

समानार्थी श्लोकः—लंका नगर्यां निवसन्ति राक्षसाः
क्वचेहवासः खलु सज्जनस्यवै।
स्वान्ते वितर्कः कृतवान्कपीश्वरो
विभीषण प्राह तदा हरे हरे॥ (पु० रा०)

कवित्तः—भूरि निसाचर भरी पूरि रावन रजधानी।
इहाँ बसहिं केहि भाँति भगत प्रभु सारँगपानी॥
अस विचार कपि हृदय रामि राघव धनु पानी।
सत विभीषणहुँ उठे निसा निघटत जिय जानी॥

भावार्थ:—"निसिचर निकर निवासा" का भाव कि जहाँ एक भी खल होता है वहाँ सज्जन रहना नहीं चाहते, यथा:—
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ विधाता॥
तो यहाँ अपार खल समूह में एक सज्जन कैसे रह सकता है।

"सज्जन कर बासा" का भाव कि जहाँ खल रहते हैं वहाँ सज्जन थोड़ी देर भी नहीं ठहरते क्यों कि सज्जन भूल कर भी खल की संगति में रहना नहीं चाहते, यथा—
सुनहु असन्तन्ह केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिय न काऊ॥
....................। "खल परिहरिअ स्वान की नाई"॥
तो फिर यहाँ खलों के बीच सज्जन का स्थाई रूप से रहना कैसे है।

"मन महुँ तरक करै कपि लागा" का भाव कि शत्रु पुरी में होने के कारण किसी से पूछ नहीं सकते अतः मन से ही विचार करने लगे।

"तेहि समय विभीषण जागा" का भाव कि अब पहर भर रात्रि शेष है और सज्जन लोग शैय्या त्याग कर उठ बैठते हैं, यथा:— पाछिल पहर भूप नित जागा।
आज हमहिं बड़ अचरज लागा॥ तथा—
उठे लखन निसि बिगत सुनि अरुन सिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगत पति जागे राम सुजान॥
आदि दूसरा भाव यह है कि उस समय विभीषण जी प्रभु इच्छा से ही जाग पड़े। भक्त को जब असमंजस आ पड़ता है तब भी प्रभु इसी तरह कृपा कर कार्य बनाते हैं, यथा जब रावण ने दरबार में राक्षसों से हनुमान जी को वध करने की आज्ञा दी तो—

सुनत निसाचर मारन धाये।
सचिवन सहित विभीषण आए॥

"तेही समय" का भाव यह है कि ग्रंथकर्त्ता जब कथा प्रसग को बदलना चाहते हैं तो 'तेही समय' अथवा 'तेहि अवसर' शब्द का प्रयोग करते हैं। यथा—

(क) तेहि अवसर आए दोउ भाई।
गये रहे देखन फुल वाई॥
(ख) राज कुवँर तेहि अवसर आये।
मनहु मनोहरता तनु छाये॥
(ग) तेहि अवसर सीता तहँ आई।
गिरिजा पूजन जननि पठाई॥
(घ) तेहि अवसर सुनि शिव धनु भंगा।
आये भृगुकुल कमल पतगा॥
(च) तेहि अवसर एक तापस आवा।
तेज पुंज लघु वयस सुहावा॥
(छ) तेहि अवसर रावन तहँ आवा।
सग नारि बहु किये बनावा॥
(ज) तेहि अवसर दशरथ तहँ आये।
तनय बिलोकि नयन जल छाये॥ आदि, आदि

यहाँ भी अब कथा प्रसंग बदलना है अतः "तेहीसमय" शब्द दिया।

राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा।
हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा॥

एहिसन हठि करिहउँ पहिचानी।
साधु तें होइ न कारज हानी ॥

अर्थः—विभीषणजी ने राम राम उच्चारण किया। कपि ने उनको सज्जन जाना और मन मे हरपित होकर यह निश्चय किया कि इनसे अपनी ओर से परिचय करूगाँ क्यों कि साधु से कार्य की हानि नहीं होती है।

समानार्थी श्लोकः— श्रुत्वा तदीयां मधुराक्षरां गिरं
बभूव हृष्टो हृदये हरीश्वरः
उवाच चेत्थं मनसि स्वके तदा
न साधु योगो विफलो महीतले (पु० रा०)

कवित्त.—धनि कुल मनि यह भक्तराज जग अति बडभागी।
जागत ही एहि रटनि राम राम नामहिं की लागी ॥
स्वामि सुगति विस्वास आस भव विभव बिरागी।
अस सज्जन मन मिले होम कारज नहीं त्यागी ॥

भावार्थ.—"राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा" का भाव यह है कि सज्जनों का स्वभाव है कि, जागने पर प्रभू के नामों स्मरण करते हैं यथाः-बीते सवत सहस सतासी। तजी समाधि शम्भु अविनासी॥
रामनाम शिव सुमिरन लागे। जाना सती जगतपति जागे ॥
"हृदय हरष" का भाव यह है कि पहले स्थान देख कर हर्ष हुआ था, पर जब मन तर्क मे लगा तब हर्ष न रह गया। अब नामोच्चारण सुना तब फिर हर्ष हुआ। दूसरा भाव यह है कि प्रथम स्थान (अर्थात् बाहरी चिन्हों को देख कर हर्ष हुआ और नाम स्मरण

से हृदय के प्रेम को देख कर हृदय में हर्षित हुए। "सज्जन चीन्हा" का भाव यह है कि बाहर के सात्विक चिन्हों को देखने पर भी खल समूह में बसने के कारण सन्देह था पर जब प्रेम से नाम स्मरण करते सुना तब सन्देह दूर हो गया और सज्जन जाना। दूसरा भाव यह है कि श्रीहनुमानजी कपटी और सज्जन दोनों को पहिचानने में बड़े प्रवीण हैं यथाः—

सोई छल हनुमान ने कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा॥

"हठि करिहौं पहिचानी"। का भाव यह है कि साधु प्रायः किसी से पहिचान नहीं करते यथा—

सदा रहहिं अपनपौ दुराये। सब विधि कुशल कुवेष बनाये॥

परन्तु मैं राम कार्य के लिये इससे जान पहिचान करूँगा दूसरा भाव यह है कि यद्यपि यह लंका का मध्य है। रावण का गृह समीप है। सशस्त्र राक्षस घूम रहे हैं, प्रभात होना ही चाहता है इत्यादि अनेक विघ्न हैं तथापि मैं अवश्य ही जान पहिचान करूँगा। क्यों कि—

"साधु ते होइ न कारज हानी"

विप्र रूप धरि वचन सुनाए।
सुनत विभीषण उठि तहं आए॥
करि प्रणाम पूंछी कुसलाई।
विप्र कहहु निज कथा बुझाई॥

अर्थ—श्री हनुमानजी ने ब्राह्मण का रूप धारण कर वचन सुनाये सुनते ही विभीषणजी उठ कर वहाँ आये। प्रणाम करके कुशल

पूछी, 'हे ब्राह्मण ! अपनी कथा समझा कर कहिये'

समानार्थी श्लोक— भूत्वाथ विप्र: प्रययौ तदन्तिकं सुश्रावयामास मनोहरां गिरम् ।
उत्थाय तत्रागतवान्महात्मा विभीषणो भागवत प्रधान: ॥
कृत्वा प्रणामं कुशलं तदीयं पप्रच्छ राजेन्द्र कथांच दिव्याम् ॥

कवित्तः—झपटि जाइ कपि द्वार, विप्रवर वेष बनायो ।
ब्रह्म वाक्य उच्चरत, विभीषण आतुर आयो ॥
कहि निज नाम प्रणाम, भाषि पद रज सिर राखी ।
दोउ कर जोरि गिरा, गद गद गर भाखी ॥

भावार्थ-"विप्र रूप धरि" का भाव यह है कि सज्जन ब्राह्मणों में से अत्यन्त प्रेम करते हैं। यथा—

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते सज्जन मम प्रान सम जिनके द्विज पद प्रेम ॥

पुनः—प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीती ।
निज निज धर्म निरत श्रुति नीती ॥

दूसरा भाव यह है कि श्री हनुमानजी प्राय विप्र रूप धारण करके ही सबसे मिलते हैं, यथा—

श्रीरामजी से— विप्र रूप धरि कपि तहँ गयउ ।
माथ नाय पूछत अस भयऊ ॥

विभीषण से— विप्र रूप धरि वचन सुनावा ।
सुनत विभीषण उठि तहँ आवा ॥

श्रीभरतजी से— राम विरह सागर महँ भरत मगन मन होत
विप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जिमि पोत

अशोक वाटिका में श्री, जानकीजी से आपने वानर वेष में ही मिलने का कारण यह है कि यदि वहां विप्र रूप धारण करते तो उन्हें विश्वास नहीं होता। क्यों कि लंका में ब्राह्मण का आना दुस्तर है, दूसरे विप्र रूप से फिर निज रूप में आते तो सीताजी को महा सन्देह होता। वे समझतीं कि यह कोई छली राक्षस है छल करता है। इसीलिये सीताजी से मिलते समय विप्रवेष नहीं बनाया।

विप्र रूप धारण करने का तीसरा भाव यह है कि इससे सज्जन स्वरूप का दृढ़ परिज्ञान हो जायगा। क्यों कि यदि राक्षस होगा तो ब्राह्मण जानकर अवश्य अनादर करेगा अथवा भक्षण करना चाहेगा।

चौथा भाव यह है कि रुद्र ब्राह्मण कोटि में हैं, यथा—

मोहाम्भोधर पूग पाटन विधौ स्वः सम्भवं शङ्कर।
वन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्क शमनं श्रीराम भूप प्रियम॥
(मंगला चरण, अरण्य का०)

श्रीहनुमानजी रुद्रावतार हैं। यथा—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरें सुजान।
रुद्र देह तजि नेह बस वानर भे हनुमान॥ (दोहावली)

वानर शरीर छोड़ कर निष्कपट विप्ररूप धारण किया। क्यों कि सज्जन में कपट अनुचित है।

"करि प्रणाम" का भाव यह है कि विभीषणजी ने स्वरूप देख कर यह निश्चय कर लिया कि यह ब्राह्मण हैं, अत प्रणाम किया।

"पूछी कुशलाई" का भाव यह है कि आप लङ्का में आकर भी अब तक कुशल पूर्वक किस प्रकार है क्योंकि यहाँ तो सब के

सब "सल मनुजाद द्विजामिप भोगी" कहहु निज कथा बुझाई" का भाव यह है कि आपका यहाँ आना आश्चर्य जनक है अतः बुझा कर कहिये। दूसरा भाव यह है कि आपके यहाँ आगमन का कोई भारी कारण होगा अतः आप अपनी व्यवस्था सांगोपाग कहिये।

की तुम हरि दासन्ह महं कोई।
मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम राम दीन अनुरागी।
आयेहु मोहि करन बड़भागी॥

अर्थ— क्या आप हरि भक्तों में से कोई हैं? क्यों कि मेरे हृदय में बड़ी प्रीति हो रही है। या आप दीनों पर प्रेम करने वाले रामजी है जो मुझे बड़भागी करने को आये हैं।

समानार्थश्लोक— किं भवान्हरि दासो मे प्रीति कलयते हृदि।
कृपां कृत्वाथवा समस्त्यमेव स्वयमागतः॥

कवित्त— की तुम नाथ सनाथ अनाथहिं आइ बनायो।
जनम जनम जगि जगनि दरस लहि हियो जुड़ायो॥
की तुम असरन सरन भगत वस भव भय हारी।
हंस वंस अवतंस दंद दुर विपति बिदारी॥

—भावार्थ— 'हरि दासन्ह महं कोई" का भाव यह है कि नारदादि हरिदास सर्वत्र विचरते हैं, उनमें से आप कोई हैं।

दूसरा भाव कि हरि दास तो कहने को बहुत हैं पर आप मुख्य जान पड़ते है। 'कोइ' शब्द यहाँ पुरुषार्थ वाची है। क्यों कि निशाचर पुरी में आप साहस कर आये हैं।

"प्रीति अति होई" का भाव कि सज्जन को सज्जन से मिल कर बड़ा सुख होता है, यथाः—

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।
संत मिलन सम सुख कछु नहीं॥

पुनः— हरिजन जानि प्रीति अतिबाढ़ी।
सजल नयन पुलकावली ठाढ़ी॥

यहाँ श्री गोस्वामी जी महाराज का यह उपदेश है कि जीव प्रभु को तब पाता है जब उसके हृदय में हरि भक्तों के प्रति अत्यन्त प्रेम होता है।

"राम दीन अनुरागी" का भाव कि इस तरह दीनों पर कृपा तो श्री राम जी ही करते हैं, क्योंकि वे दीन अनुरागी हैं, यथाः—

ऐसो राम दीन हितकारी (विनय)
पुनः—अस प्रभु दीन बंधु हरि कारण रहित कृपाल।
तुलसी दास सठ ताहि भजु छाँड़ि कपट जजाल॥
तथाः—रघुबर रावरि यहि बड़ाई।
निदरि गनि आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई॥ (विनय)

श्री विभीषण जी पहले श्री हनुमान् जी को 'हरिदासन्ह महँ कोइ' कहते हैं फिर 'राम दीन अनुरागी' कहा। क्यों कि प्रथम हरिदास अर्थात संत मिलते हैं तब श्री राम जी मिलते है। प्रथम संत के मिलने से जीव का हृदय निर्मल होकर भगवत् प्राप्ति का अधिकारी होता है, तब श्री रघुनन्दन मिलते हैं, यथा:—

भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ जो संत होहिं अनुकूला॥

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिर गुनग्राम॥

अर्थः—तब श्री हनुमान जी ने सम्पूर्ण राम कथा और अपना नाम सुनाया राम जी के गुण समूह का स्मरण कर दोनों के शरीर पुलकित हो गये। और मन आनन्द में मग्न हो गया।

समानार्थी श्लोकः—

तदाहि श्री हनुमानाह स्वक नाम हरेः कथाम्।
श्रुत्वा विभीषण स्वप्तः स्मारं स्मारं हरेर्गुणान्॥

कवित्तः—पवन सुअन सब कहें नाम हनुमान पुकारें।
रविकुल कमल पतंग पानि पंकज सिर धारें॥
ताकि तिय सिय मातु तात खोजन हम आये।
सुनत युगल तन पुलक वारि धारा दृग छाये॥

भावार्थः—राम कथा कहने का भाव कि राम कथा के भीतर इनकी भी कथा है।

'कही सब राम कथा' अर्थात श्री रामजी के अवतार लेने के बाद से आज तक की सारी कथा सुनायी। श्रीहनुमतलालजी बोलेः—

कवित्तः—रविकुल दशरथ नृपति भयो इक धर्म धुरंधर।
बल सब विभव त्रिलोकि जासु लघु लगत पुरंदर॥
दसगुन निज वस करें दसहुँ दिसि रथ चढ़ि धावै।
दशसिर रिपु सुत होय सोइ दशरथ कहलावै॥

त्रेता युग के समय अवधपुरी में रघुकुल भूषण दशरथ नाम के राजा हुए। वे बड़े ही सत्यवादी और ज्ञानी भक्त थे। उनकी कौशल्या कैकेई, सुमित्रा आदि स्त्रियाँ पतिकी आज्ञाकारिणीथींऔर भगवान के चरण कमलों में विशेष नम्रतापूर्वक दृढ प्रेम रखतीथीं।

जब राजा का चौथापन आया तो एक बार उनके मन में बड़ी ग्लानि हुई कि मेरे पुत्र नहीं है। तब अपने गुरु वशिष्ठजी के घर गये और चरणों पर मस्तक रख कर अपना सारा दुख गुरु जी को सुनाया। श्री वशिष्ठजी ने उन्हें समझाते हुए कहा कि 'राजन! धैर्य धरो, तुम्हारे चार पुत्र होंगे जो तीनोंलोकों में प्रसिद्ध, भक्तों का भय हरने वाले होंगे। श्री वशिष्ठजी ने शृंगी ऋषि को बुलवाया और पुत्र की शुभ कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया।

कवित्त—पुलकि अंग ऋषि शृंग वेद वर मंत्र उचारैं।
विप्र आहुति दें सभक्ति स्वाहा धुनि धारैं॥
पुनि मुनि आहुति दीन्हि परम श्रद्धा चितमाने।
लीन्हे हवि कर कुण्ड देव पावक प्रकटाने॥

अग्नि देव प्रकट होकर दशरथ जी से बोले' हे राजन! वशिष्ट जी ने जो कुछ कहा था तुम्हारा वह सब कार्य सिद्ध हुआ इस यज्ञ के हवि को ले जाकर अपनी रानियों में जो जिस योग्य हो भाग बना कर बाँट दो'

कवित्त—कह्यो लेहु आसीरवाद नृप सत्य हमारो।
भयो सकल सुख साथ मनोरथ सफल तुम्हारो॥
ह्वै कृतज्ञ नृप यज्ञ देव कर पायस लीन्यो।
समुचित भाग बनाइ बाँटि निज रानिन दीन्यो॥

इसप्रकार तीनों रानियाँ गर्भवती हुई। और पवित्र चैत्र शुक्ल नवमी तिथि, अभिजित नक्षत्र दोपहर को समस्त लोकोंको विश्राम देने वाले जगत भर में व्यापक प्रभु कौशल्या के यहाँ प्रगट हुए।

कवितः—समय पाय भरि भाय चारि सुत रानिन जाये।
नाम राम लछिमन भरत रिपुहन गुरु गाये॥
कौशल्यो सुत राम भरत माता कैकेई।
सेप सुमित्रा सुअन गाइ नाउनि धन लेई॥

इस प्रकार आनन्द में कुछ दिन व्यतीत होने के बाद भगवान ने बहुत प्रकार से बालचरित्र कर दासों को बहुत ही आनन्द दिया कुछ समय व्यतीत होने पर जब चारों राजकुमार बड़े हुए, तो चूड़ा करन कीन्ह गुरु जाई। विप्रन पुनि दक्षिणा बहु पाई।

और ज्योंहि सब भाई कौमारावस्था के होगये, अर्थात् दस वर्ष के होगये तो, माता, पिता गुरु, ने उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया। श्री रामचन्द्रजी भाइयों सहित गुरु के घर विद्या पढ़ने गये और थोड़े ही काल में सब विद्यायें प्राप्त कर लीं।

कवित्तः—जोकी सहजहिं साँस चारि वेदन उपजावति।
बड़ वशिष्ठ को भाग्य ताहि अनुराग पढ़ावति॥
प्रभु को बाल विनोद कौन कवि बरनि बतावै।
गावैं यदि मति वाल्मीकि तुलसी सी पावै॥

कुछ दिनों बाद श्रीमहर्षि विश्वामित्र जी आकर श्री दशरथ जी से श्री राम और लक्ष्मण दोनो भाइयों को अपने यज्ञ की रक्षा, एवं दुष्टों के नाश के लिये माँग कर ले गये। मार्ग में जाते हुए मुनि ने ताड़का नाम की राक्षसी को दिखायी। ताड़का ने

क्रुद्ध होकर धावा किया। श्री राम जी ने एक ही बाण में उसके प्राण हरण कर लिये और दीन जान कर उसको निज पद दिया। श्री विश्वामित्र जी के आश्रम में पहुँच कर सुबाहु आदि राक्षसों को मार कर तथा मारीच को बिना फल के बाण से चारसौ कोस समुद्र पार गिरा कर श्री राम एवं लक्ष्मण जी ने ब्राह्मणों को निर्भय किया।

कवित्तः—मुनिहिं न्योति तेहि काल जनक महिपाल बुलायो।
धनुष यज्ञ सुनि गाधि तनय उर आनन्द छायो॥
मिथिला मग पग धरत राम गौतम तिय तारयो।
भंजि शंभु धनु परसुराम को गर्व टहारयो॥

इसके बाद श्री विश्वामित्र जी की आज्ञा से श्री जनक जी ने पत्र भेज कर श्री दशरथ जी को बुलाया।

कवित्तः—सुनि बरात सजि अवध नृपति मिथिला मह आये।
चारिहु बालक व्याहि पलटि निज पुर नियराये॥
वधुन विविध वर वस्तु समर्पित सासुन कीन्यो।
देखि सीय मुख कनक भवन कैकेयी दीन्यो॥

कवित्तः—वह सुख समय समाज अवध कै वह सुघराई।
सहसानन सारदहु वरनि नहिं सकहिं सिराई॥
चौदह भुवननि भरी सम्पदा सब सुखदाई।
सो जनु सिमटि सिमटि अवध नगरी महँ आई॥

कुछ दिनों के बाद एक दिन दरबार में दर्पण में अपना मुख देखते समय कान के पास के कुछ बालों को श्वेत देख कर

श्री दशरथ जी के हृदय मे वैराग्य हुआ और उन्होंने श्री राम जी को राज्य भार देने का विचार किया।

श्री वशिष्ठ गुरुदेव की आज्ञा म, महाराज राज्याभिषेक की तैयारी करने लगे। किन्तु शारदा रा प्ररणा मे मथरा नाम की एक दासी के बहकाने मे आकर कैकेयी ने दो वरदान मांगे। एक तो श्री रघुनन्दन के बदले में भरत जी को राज्य, और दूसरे—

तापस वेष विशेष उदासी। चौदह बरिस राम बनवासी॥

यह सुन कर श्रीरामजी मुनि वेष धारण कर श्रीजानकी एवं लघुभ्राता लक्ष्मण, सहित माता पिता गुरु एवं पुरजन, आदि से विदा होकर "सुमन्त" मन्त्री के आग्रह से रथ पर सवार हो वन को पधारे। गंगा तट पर आकर प्रभु ने दरयस सुमन्त को रथ सहित अयोध्या वापिस किया। और पुन प्रेमी भक्त केवट स चरण धुलाकर उसे कृतार्थ कर उसके द्वारा गंगा पार हुए* गंगा में स्नान कर आप प्रयाग में भरद्वाज के आश्रम मे पहुंचे। रात्रि में वहीं विश्राम कर प्रभु श्री वाल्मीकिजी के आश्रम में होते हुए उनके कथनानुसार चित्रकूट म आकर देवताओं द्वारा निर्मित पर्ण कुटी में निवास करने लगे।

सुमन्त के वापस आने पर और यह कहने पर कि श्रीरघुनन्दन सीता एवं लक्ष्मण सहित वन चले गये महाराज दशरथ ने तृणवत् शरीर त्याग दिया। वशिष्ठ जी के बुलाने पर भरतजी शत्रुघ्नजी के साथ अपने ननिहाल कैकय देश से अवध आये।

---

*केवट चरित्र का गूढ़ भावार्थ एवं शंका समाधान सहित आनन्द लेने के लिये मण्डल द्वारा प्रकाशित "भक्तराज केवट" पुस्तक पढ़िये। मू० आठ आना पता—मानस कथा मण्डल

मदनटेर वृन्दावन

और पिता की मृत्यु तथा राम लक्ष्मण एवं जानकीजी के वन जाने का समाचार जानकर बहुत विलाप करने लगे। फिर गुरु के समझाने पर वेदविधि से अपने पिताके शव का दाह संस्कार तथा श्राद्ध करके पुरवासियों, माताओं, एवं तथा गुरुदेव के साथ चित्रकूट मे भगवान श्रीरामजी से आकर मिले। रघुनन्दनजी के बहुत समझाने पर भरतजी चरण पादुका लेकर अवध लौट आये और नन्दीग्राम में पृथ्वी खोदकर जटाएं धारण कर व्रत नियमादि सहित श्रीसीताराम जी के दर्शनों की आशा लिये हुए रहने लगे।

इधर चित्रकूट में भगवान, लक्ष्मण तथा जनकनन्दनी सहित आनन्द पूर्वक निवास कर रहे थे। एक दिन इन्द्र का पुत्र जयंत उनके बल की परीक्षा लेने आया। वह कौए का रूप धारण कर—

सीता चरन चोंच हति भागा।
मूढ़ मन्दमति कारन कागा॥

रामजी ने उस पर "मन्त्रित" कर सींक का बाण चलाया। वह तीनों लोको में रक्षा के लिये गयापर —

काहु बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही॥

अन्त मे नारदजी के उपदेश करने पर वह प्रभु की ही शरण में आया और बहुत विनती की तो —

सुनि कृपालु अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी॥

इस प्रकार चित्रकूट में जानकी तथा लक्ष्मण के सहित कुछ दिनो तक आनन्द पूर्वक निवास करने के बाद, वहां से चल कर महामुनि 'अत्रिजी' के आश्रम मे पहुँचे। मुनिवर अत्रिजी की धर्म पत्नी पतिव्रता अनुसुइयाजी ने दिव्य वस्त्रआभूषण पहना कर सीताजी का सत्कार किया तथा जगत् की नारियों के कल्याणार्थ उनकी ओट मे पातिव्रत धर्म का उपदेश दिया। अत्रिजी से विदा

होकर मार्ग में विराध राक्षस का वध करके मुनिवर सरभंग को परम पद देते हुए, तथा भक्तवर सुतीक्ष्णजी को दर्शन तथा, वरदान से कृतार्थ कर उनके साथ श्रीरामजी अनुज एवं जानकी सहित मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी के आश्रम में पहुँचे। उनसे मिल कर उनके कथनानुसार आपने दण्डकवन को पवित्र किया। तथा गृद्धराज जटायू से मिलकर पञ्चवटी में पर्णकुटी बनाकर निवास करने लगे। वहाँ लक्ष्मणजी के प्रश्न करने पर श्रीरामजी ने उन्हें माया, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदिका उपमा रहित उपदेश किया।

एक दिन शूर्पणखा पञ्चवटी में टहलती हुई आई और राम लक्ष्मणका मनोहर रूप देखकर रुचिर रूप धारण कर भगवान श्रीराम के पास आकर उन्हें अपने साथ विवाह करने को कहा। श्रीरघुनन्दनजी ने उसे लक्ष्मण के पास यह कह कर भेजा कि "अहई कुमार मोर लघु भ्राता" लक्ष्मणजी ने उसे पुनः राम के पास यह कह कर लौटाया कि—

सुन्दरि सुनु मैं उन कर दासा।
पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
प्रभु समर्थ कौशलपुर राजा।
जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा॥

तब वह पुन श्रीराम के पास गयी तो श्री प्रभु ने फिर उसे लक्ष्मण के पास भेजा। इस बार कुपित होकर—

लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृणतोरि लाज परिहरई॥

यह सुन कर राक्षसी क्रोधित हो भयङ्कर रूप धारण कर सीता जी की ओर खाने को दौड़ी। तत्क्षण लक्ष्मणजी ने श्रीराम के आदेशानुसार उसके नाक कान काटकर उसे कुरूप कर दिया।

नाक कान कट जाने पर वह राक्षसी रोती हुई खर, दूषण पास गयी, और वे कुपित हो चौदह सहस्र वीरों के साथ आये

पर रामचन्द्रजी ने उन सबों का नाश कर सुर, नर, मुनि, सबको सुखी किया।

उन राक्षसों का इस प्रकार नाश होते देख शूर्पणखा ने रावण के पास लङ्का में आकर रोते हुए अपनी दशा सुनायी। रावण उसे समझा कर मारीच के पास आया, और उससे बोला—

होहु कपट मृग तुम छल कारी।
जेहि विधि हरि आनौ नृप नारी॥

मारीच ने पहिले तो उसे बहुत समझाया पर जब रावण न माना और उसे ही मारने को तैय्यार होगया तब मारीच—

उभय भांति देखा निज मरना।
तब ताकेसि रघुनायक सरना॥

वह सुन्दर मृग बनकर श्रीप्रभुकी पर्णकुटी के पास पहुँचा और छल से श्रीराम के साथ-साथ लक्ष्मण को भी आश्रम से दूर कर अन्त में रघुनन्दन के बाण से मर कर परलोक सिधारा। इधर रावण ने साधु का वेष धारण कर छल से जगत् जननी जनक सुता श्रीजानकीजी का अपहरण किया और आकाश मार्ग में रथ पर चढ़ा कर लंका की ओर ले चला। सीताजी करुण स्वर से विलाप करती जा रही थीं जिसे सुन कर गृद्धराज जटायु उनकी सहायता के लिये रावण से लड़े। किन्तु अन्त में रावण उन्हें घायल कर सीताजी को लेकर लंका पहुँचा। और जब—

हारि परा खल बहुविधि विधि भय अरु प्रीति दिखाइ।
अशोक पादप तरे राखेसि यतन कराइ॥

माया मृग मारीच का वध कर जब श्रीराम लक्ष्मण सहित वापस लौटे तो—

आश्रम देखि जानकी हीना। भयउ विकल जस प्राकृत दीना॥

श्रीलक्ष्मणजी के समझाने पर लता वृक्षादिकों में सीता-मूर्ति पूछते हुए गृद्धराज जटायू के समीप पहुँचे। जटायु प्रभु राम को जानकी का रावण के द्वारा हरणादिक जाना बताकर, उनका दर्शन करते हुए गृद्ध शरीर त्याग कर साकेत धाम गया।

गृद्धराज जटायू की क्रिया कर कबन्ध का वध कर उसे सद्गति देकर लक्ष्मण के सहित भगवान श्रीराम भक्तिमती शबरी की कुटिया पर आये। शबरी ने प्रेम से प्रभु का आतिथ्य किया* भक्तवत्सल श्री राघव उसे नवधा भक्ति के उपदेश के साथ साथ परम पद देकर उसके कथनानुसार पंपा सरोवर के तीरपर आ स्नान कर प्रसन्न हो भ्राता सहित बैठे।

प्रभु को प्रसन्न जान कर उस समय देवर्षि नारद आये और सुन्दर शब्दों से प्रेम पूर्वक स्तुति कर तथा यह वरदान लेकर ब्रह्मलोक पधारे। कि—

राम सकल नामन ते अधिका। होहु नाथ अघ खग गनवधिका

तदनन्तर श्री रघुनाथ जी लक्ष्मण सहित आगे चल कर ऋष्यमूक" पर्वत के पास आये। वहाँ सुग्रीव के प्रधानमंत्री हनुमान जी से मिलाप हुआ और उनके कथनानुसार आपने सुग्रीव से मित्रता कर महाबलशाली वानर राज बालि का वध कर किष्किन्धा" का राजा बनाया। सुग्रीवको यह आज्ञा देकर कि अंगद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय धरहु मम काजू॥

श्री राम लक्ष्मण वर्षा ऋतु निकट जान कर प्रवर्षण पर्वत

* भक्तिमयी शबरी के चरित का गूढार्थ भावार्थ तथा शंका समाधान सहित जानने के लिये मण्डल द्वारा प्रकाशित 'भक्तिमयी शबरी" पुस्तक पढ़िये। मू० आठ आना। पता —मानस कथा मण्डल मदनकुण्ड वृन्दावन।

की गुफा में विश्राम करने लगे।

वर्षा ऋतु व्यतीत होने पर भी जब सुग्रीव प्रभु के पास न आया तो श्री राम जी लक्ष्मण जी से बोलेः—

वर्षा विगत सरद रितु आई। सुधिन तात सीता कर पाई॥

× × × × ×

सुग्रीवहुँ सुधि मोर बिसारी। पावा राज कोप पुर नारी॥

प्रभु के वचन सुन श्री लक्ष्मण कुपित होकर जब सुग्रीव को मारने के लिये तैयार हुएः—

तब अनुजहिं समुझावा रघुपति करुनासींव।
भय दिखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव॥

अतः श्री राघवेन्द्र के कथनानुसार—

कवित्तः—चलि लाये सौमित्र सपदि सुग्रीव कपीसहिं।
अङ्गदादि हनुमान संग औरहु बहु कीसहिं॥
सविनय बंदि पदारविन्द प्रभु आयसु पाई।
बैठे सबहिं सभीत रह्यो सुग्रीव लजाई॥
कह सुग्रीव प्रभु छमहु अमित अपराध हमारे।
हम कपि निकर अनेक एक अब शरनि तुम्हारे॥
छिनहिं विलम्ब प्रलम्ब भुजनि भरि उठि के भेंट्यो।
ग्लानि आनि के हानि सोच संकट सब मेट्यो॥

तदनन्तर कपिपति सुग्रीव ने अपने वानर वीरों को श्री जानकी जी का पता लगाने चारों दिशाओं में भेजा।

कवित्तः—आयसु पाइ नवाइ सीस कपि कटक सिधायो।
धर्यो पद हनुमान हेरि हरि हृदय लगायो॥

नील जलज दल सरिस करज सो काढि अनूपम।
दियो मुद्रिका मुदित लियो कपि मानि प्रान मम ॥

तत्पश्चात् अंगद हनुमानादि श्रेष्ठ वीर श्री जनकनन्दिनी का पता लगाते हुए सागर तट पहुँचे। और वहाँ गृद्धराज सम्पाती के द्वारा श्री जानकी जी का लङ्का में होना जान कर जाम्बवन्त के उत्साह दिलाने पर पवनकुमार हनुमान सागर लाँघ कर मार्ग में सर्पों की माता सुरसा को (जो देवताओं के कहने से हनुमान जी की बल बुद्धि का पता लगाने आयी थी) अपनी बल बुद्धि से सन्तुष्ट कर तथा समुद्र में रहने वाली मायाविनी राक्षसी सिंहिका का वध कर लङ्का पहुँचे। और रात्रि के समय सूक्ष्म रूप धारण कर—

कवित्त—चल्यो न अजलौं कतहुँ मो। सीतो कौ पायो।
मंदिर मंदिर मथत भवन गगन के आयो॥
तिल तिल मोग्या सदन दीठि दस दिसि दौराई।
तदपि तहू नहिं परी जनक नन्दिनी लखाई॥

और हे तात! वह पवन तनय श्री रघुनन्दन का दास हनुमान मैं ही हूँ।

"सुनत जुगल तन पुलक मन मगन" का भाव यह है कि हरि कथा कहने सुनने से भक्तों की ऐसी ही दशा होजाती है, यथा—

कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृति मन मुदित नहाहीं॥

सुनहु पवन सुत रहनि हमारी।
जिमि दशनन्ह महुं जीभ विचारी॥
तात कबहुं मोहि जानि अनाथा।
करिहहिं कृपा भानु कुल नाथा॥

अर्थः—हे हनुमान जी! सुनिये हम तो यहाँ इस प्रकार निर्वाह करते हैं, जैसे दाँतों के बीच मे विचारी जीभ निर्वाह करती है। हे तात! कभी मुझ दीन को अनाथ जान कर सूर्यवंश के स्वामी श्री रघुनाथ जी कृपा करेंगे।

समानार्थी श्लोकः—

कपीश्वरं प्राह मुदा महात्मा वसाम्यहं राक्षस वृन्द मध्ये।
जिव्हेव दन्तावलि मध्यगात्र वदामि किं वृत्तमतः स्वकीयम्॥
दीनातिदीनं नितराम नाथं कदाहिमां श्री रघुवंश नाथः।
सदा सनाथं करुणार्द्र दृष्ट्या करिष्यतीति कथय द्रुत त्वम्॥

कवित्तः—तब प्रभु विरद विचारि विभीषण दग भरि वारी।
दीरघ साँस सँभारि अटकि इमि गिरा उचारी॥
तात कबहुँ रघुवीर धीर निज विरद विचारी॥
करिहैं मो पर कृपा प्रणत आरत हितकारी।

भावार्थः—"पवन सुत" कहने का भाव है कि श्री हनुमान् जी ने विभीषण जी को अपना नाम बता कर अपने को पवन पुत्र भी बताया। जैसे श्री भरत जी से मिलने पर कहा था, यथा—
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपा निधाना॥

इसी लिये विभीषण जी ने उन्हें पवनसुत कहा। दूसरा भाव कि "पवन" से कोई बात छिपी नहीं रहती तथा पवन सब के प्राणाधार है। तुम पवन के पुत्र हो अतः तुमसे कुछ छिपा नहीं है और तुम मेरे प्राणों के रक्षक हुए। इस प्रसंग में सर्वत्र श्री विभीषणजीने अपने लिये एकवचन का प्रयोग किया है। यथाः—

(१) की तुम राम दीन अनुरागी।
आयहु मोहि करन बड़भागी॥

(२) तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा।
करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥

(३) अब मोहि भा भरोस हनुमंता।
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहीं संता।

(४) जो रघुबीर अनुग्रह कीन्हा।
तो तुम मोहि दरस हठि दीन्हा॥

पर यहाँ "सुनहु पवन सुत रहनि हमारी" में बहुवचन 'हमारी' पद देकर परिवार सहित अपने को दुखित बनाते हैं।

श्री रघुनाथ जी भी विभीषण से वही कहते हैं, यथाः-
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुशल कुठाहर बास तुम्हारा॥

"तात कबहु मोहि ..कृपा भानुकुल नाथा" कह कर अपनी दीनता दिखाते हैं।

तामस तन कछु साधन नाहीं।
प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता।
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥

अर्थः—हमारा तामसी शरीर सर्वथा साधन रहित है और न मन में श्री रामचन्द्र जी महाराज के चरणकमलों में प्रीति ही है। परन्तु हे हनुमान्‌जी ! अब मुझे आशा हुई, क्यों कि प्रभु की कृपा के बिना संत नहीं मिलते हैं।

समानार्थी श्लोकः—

तामसीय तनुर्मेहि साधना नापि विद्यते।
अथाशा मे समुत्पन्ना भवतो दर्शनाद् ध्रुवम् ॥

कवित्तः—हनुमान नहिं ज्ञान ध्यान संजम मो मन माहीं।
प्रभुपद प्रीति प्रतीति रीति साधन कछु नाहीं ॥
जब जापै हरि आपु डीठि करुणा की डारैं।
तब ताके ढिग आइ संत अवतंस पधारैं ॥

भावार्थः—"तामस तन , पद सरोज मन माहीं"। का भाव कि श्री हरि को प्राप्त करने के तीन ही मार्ग हैं,—कर्म, ज्ञान एवं उपासना और मुझ में एक भी नहीं। तामस तन' से अपने को सत् कर्मों से रहित बताया क्यों कि तामसी शरीर से सत् कर्म नहीं बन सकते यथा.-

होइहैं भजन न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥

साधन नाहीं" से अपने को ज्ञान रहित बताया साधन के बिना ज्ञान एवं प्रभु की प्राप्ति नहीं होती। यथा —

ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका।
साधन कठिन न मन कहुँ टेका ॥
सब साधन कर सुफल सुहावा।
लखन राम सिय दरसन पावा ॥

"प्रीति न पद सरोज मन माहीं" से अपने को उपासना रहित कहा यथा:- मिलहिं कि रघुपति बिनु अनुरागा। किए कोटि जप जोग विरागा॥

पुनः-प्रीति बिना नहीं भगति दृढ़ाई।
जिमि खगपति जल कइ चिकनाई॥

पहले "कछु साधन नाहीं" यह कर तब प्रीति न पद सरोज" कहा, क्यों कि साधन के फल से ही प्रभु चरण में प्रीति होती है, यथाः-

तव पद पङ्कज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर फल यह सुन्दर॥

"कछु साधन नाहीं" का दूसरा भाव यहहै कि साधन सात्विक प्रकृति वालों से होता है और रजोगुणी प्रकृति वालों से भी कुछ बनता है पर तामसी तन से तो कुछ नहीं बन सकता।

"प्रीति न पद सरोज मन मांहीं":—भगवंत पद कमल अमल अनुराग का बरदान प्राप्त कर भी "प्रीति न पद सरोज मन माहीं" कहना यह भी विभीषण जी की कार्पण्य भक्ति है। वरना इनमें तो नवों प्रकार की भक्ति विद्यमान है, जैसा कि श्री राम जी स्वयं कहते हैं:-

सुनु लकेस सकल गुन तोरे। ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे॥

नवधः भक्ति का उदाहरण नीचे दिया जाता है। नवधा भक्तिः-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥

अब क्रम से विभीषण जी में इनका उदाहरण देखियेः—

-श्रवणः-तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुणग्राम॥

पुन.—श्रवण सुयश सुनि आयउं प्रभु भंजन भवभीर।

त्राहि त्राहि आरत हरन शरण सुखद रघुबीर ॥

२: कीर्तन— तात राम नहिं नर भूपाला।
भुवनेस्वर कालहुँ कर काला ॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता।
व्यापक अजित अनादि अनंता ॥ आदि ।

३—स्मरण— राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा।
हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥
देखिअहुँ जाइ चरन जलजाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता ॥

४—पाद सेवन— गयउ विभीषण पास चित्ति कहेउ पुत्र चरमांगु
तेहि मांगसि भगवंत पद कमल अमल अनुरागु

५—अर्चन— भवन एक पुनि दीख सुहावा।
हरि मन्दिर तहँ भिन्न बनावा ॥

६—वन्दन— अस कहि करत दण्डवत देखा।

७—दास्य— अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै।
मज्जन करिअ समर श्रम छीजै ॥

८—सख्य— खल मण्डली बसहु दिन राती ॥
सखा धर्म निबहै केहि भांती।

६—आत्म निवेदन—श्रवण सुजस सुनि आयऊँ प्रभुभंजन भवभार।
त्राहि त्राहि आरत हरन शरन सुखद रघुबीर ॥

"बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता" का भाव यह है कि चाहे ब्रह्माण्ड भर में खोज डाले पर संत नहीं मिलते, और जब प्रभु की कृपा होती है तो घर बैठे ही मिल जाते हैं।

यथा—संत विशुद्ध मिलहिं परि तेही।
चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥

और श्रीराम की कृपा कपट त्याग कर भजन करने में ही होती है-

यथा-मन क्रम वचन छाँड़ि चतुराई।
भजन कृपा करिअहिं रघुराई॥

जौं रघुबीर अनुग्रह कीना।
तौ तुम मोहि दरसु हठि दीना॥
सुनहु विभीषण प्रभु कै रीती।
करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥

अर्थ– जब श्रीरघुनाथजी ने कृपा की, तो आपने मुझे हठपूर्वक अर्थात् पुकार कर दर्शन दिया। (श्री हनुमान बोले-) हे विभीषण जी! सुनिये यह प्रभु की रीति है कि वे सदा सेवक पर प्रीति करते हैं।

समानार्थी श्लोक—श्री रामानुग्रहेणैव दर्शन प्राप्तवानहम्।
सेवके प्रीतिरधिका श्री रामस्य विभीषण:॥

कवित्त–समय विचारि संभारि पवन सुत बात बखानी।
हम तुम एकै तात दैव गति जात न जानी॥
कह कपि प्रभु पद सुमिर विभीषण धीरज धारो।
भगत वत्सल भगवान राम मम ओर निहारो॥

भावार्थ– "जौं रघुबीर" का भाव यह है कि रघुवीर शब्द का प्रयोग पाँच प्रकार की वीरता के सम्बन्ध में होता है। यथा–

त्याग वीरो, दयावीरो, विद्यावीरो विचक्षणः।
पराक्रम महावीरो धर्मवीरः सदा स्वतः॥
पञ्चवीराः समाख्याता राम एव स पञ्चधा।
रघुवीर इति ख्यातः सर्व वीरोपलक्षणः॥

ये पाँचों वीरताएँ रघुनाथजी में ही हैं, अतः इन्हें रघुवीर कहते हैं। पाँचों प्रकार की वीरता का उदाहरण क्रम से देखिये—

त्यागवीर—पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुवीर।
हृदय न हरष विषाद कछु पहिरे वलकल चीर॥
दया वीर—अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुवीर।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥
विद्यावीर—श्री रघुवीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥
पराक्रमवीर-समय विलोके लोग सब जानि जानकी भीर॥
हृदय न हरष विषाद कछु बोले श्री रघुवीर॥
धर्म वीर—श्रवण सुयश सुनि आयऊँ प्रभु भंजन भव भीर॥
त्राहि त्राहि आरत हरन शरन सुखद रघुवीर॥

"दरश हठि दीन्हा" का भाव यह है कि अपने भाग्य की प्रबलता दिखाते हुए प्रभु के साथ साथ श्री हनुमान् जी का अनुग्रह दरसाया।

"करहिं सदा सेवक पर प्रीती" का भाव यह है कि प्रेम का एक रस (सदा) निबाहना कठिन है। पर श्री राम जी सदा एकरस नेह निबाहते हैं। क्यों कि वे प्रभु हैं अर्थात सब प्रकार समर्थ हैं। यथा—श्रीविनय पत्रिका मे गोस्वामीजी कहते हैं,
"ऐसो हरि करत दास पर प्रीती"॥

कहहु कवन मैं परम कुलीना।
कपि चञ्चल सबहीं विधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा।
तेहि दिन ताहि न मिलइ अहारा॥

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुवीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे विलोचन नीर॥

अर्थ– (आप अपने को तामसी कहते हैं) तो कहिये मैं कौन परम कुलीन हूँ। जाति से बन्दर, चंचल सभी प्रकार से हीन हूँ। जो प्रातः काल हमारा नाम ले ले तो उसे उस दिन भोजन न मिले। हे सखा! सुनिये, "मैं ऐसा नीच हूँ तो भी मेरे ऊपर रामजी ने कृपा की है," यह भगवान के गुण स्मरण कर हनुमानजी के दोनों नेत्रों में जल भर आया।

समानार्थी श्लोक—

सखे किं कुलीनो हरिश्चञ्चलोहं विहीनः परैः कर्मभिर्मूढ भक्त।
तथापीदृशेचाधमे भक्तवन्द्योह्यकार्षीत्कृपां रामचन्द्रो दयालुः॥

कवित्तः–सम दमा दया विवेक टेक उर नेक न आनौं।
भगति विरति विज्ञान दान धर्महु नहि जानौं॥
कीस जाति सब भाँति खीश उद्धत उतपाती।
ताहू पर प्रभु कृपा सुमिरि आवत भरि छाती॥

भावार्थः–"कहहु कवन मैं परम कुलीना" का भाव कि तुम्हारा तो केवल शरीर ही तमोगुणी है, पर कुल तो उत्तम है, यथाः—

उत्तम कुल पुलस्त कर नाती।
शिव विरंचि पूजे बहु भाँती॥

पुनः–दो०–उपजे जदपि पुलस्त कुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप वश भये सकल अघरूप॥

32023

किन्तु मैं तो कुल एवं शरीर दोनों से ही हीन हूँ। आशय यह है कि श्री प्रभु कुल शरीरादि पर विचार नहीं करते। जैसा कि उन्होंने स्वयं श्री मुख से शबरी को उपदेश किया है:—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पांति कुल धर्म बड़ाई।
धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा।
बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥

संतों का मत है कि जाति, कुल आदि का अभिमान भक्ति में बाधक है, जैसा सुग्रीव भगवान् श्री राम से कह रहे हैं:—
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥
ये सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥

"सबहि बिधि हीना" का भाव कि कुल, जाति, शरीर, स्वभाव इत्यादि सभी से हीन हूँ।

"प्रात लेइ जो नाम हमारा" का भाव यह है कि आपका (विभीषण) नाम तो लोग मंगल जान कर भागवतों में स्मरण करते हैं, यथा:—

प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक व्यासाम्बरीष
शुक शौनक भीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुन वशिष्ठ विभीषणाद्यान्
एतान् हम्परम भागवतान्नमामि॥

किन्तु हमारा नाम लेने से तो भोजन भी मिलना कठिन है। इस सम्वाद में विभीषण जी की तरह श्री हनुमन्त लाल जी ने भी सर्वत्र अपने लिये एक वचन का प्रयोग किया है यथा:—

एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी।
साधुते होइ न कारज हानी॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना।
कपि चंचल सबहीं विधि हीना॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुवीर।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे विलोचन नीर॥

किन्तु "प्रात लेइ जो नाम हमारा" में 'हमारा' बहुवचन वाची पद देकर बताया कि केवल मैं ही नहीं बल्कि मेरी जाति भर दोष युक्त है यथाः—

असुभ होत जिनके सुमिरे ते वानर रीछ विकारी।
वेद विदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी॥ (विनय)

भगवद्भक्तों का यही स्वभाव है किः—

गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा।
जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥

यह कार्पण्य शरणागति का लक्षण है। वरना श्री पवन कुमार तो प्रातः स्मरणीय मंगलमूरति रूप हैं। उनके द्वादश कार्यों के मंत्रों में भी यही वर्णन है, यथाः—

ॐ हनुमान् अञ्जनीसूनु वायुसूनुर्महाबलः।
रामेष्ट फाल्गुन सखा पिङ्गाक्षोऽमित विक्रमः॥
उदधि क्रमणश्चैव सीता शोक विनाशनः।
लक्ष्मण प्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा॥
एतानिद्वादश नामानि कपीन्द्रस्य महात्मनः।
प्रातः काले प्रदोषेच यात्राकालेच यः पठेत्॥
तस्य रोग भयन्नास्ति सर्वत्र विजयी भवेत्।

आनन्द रामायण में भी प्रातः स्मरणीय महात्माओं में इनकी गणना है;—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥
सप्तैतान्संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टकम्।
जीवेद्वर्ष शतं साग्रमपमृत्यु विनश्यति।

जिस प्रकार विभीषण जी नवधा भक्ति से पूर्ण हैं उसी तरह हनुमानजी में भी नवधा भक्ति के उदाहरण देखिये।

श्रवण—श्रवण भक्ति के लिये क्या कहा जाय, कोइ तो किसी विद्वान् से प्रभु चरित्र सुनता है, पर इन्हें तो साक्षात् श्री प्रभु ने ही स्वयं "प्रभु चरित" सुनाया, यथा—ऋष्य मूक पर्वत के समीप श्री हनुमंतलालजी के प्रश्न करने पर कि—

को तुम श्यामल गौर शरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥

श्रीप्रभु बोले—
अवध नृपति दशरथ के जाये।
हम पितु बचन मानि बन आये॥
नाम राम लछमन दोउ भाई।
संग नारि सुकुमारि सुहाई॥
इहां हरी निसिचर बैदेही।
खोजत बिप्र फिरहिं हम तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई।
कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥

कीर्त्तन—विभीषणजी की तरह रावण दरबार में—
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया।
पाइ जासु बल बिरचित माया॥
खरदूषण त्रिसरा अरु बाली।
हते सकल अतुलित बलसाली॥
राम नाम बिनु गिरा न सोहा।
देखु बिचार त्याग मद मोहा॥

मोह मूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥

स्मरण— सुमिरि पवन सुत पावन नामू।
अपने वश करि राखेउ रामू॥
मसक समान रूप कपि धरी।
लंका चले सुमिरि नरहरी।
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना॥
पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥

पादसेवन— यह भागी अंगद हनुमाना।
चरन कमल चांपत विधि नाना॥

अर्चन— अस कहि नाइ सबन कर माथा।
चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा॥

वन्दन— प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना।
सो सुख उमा जाइ नहि बरना॥

दास्य— जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे।
सेवक प्रभु हि परै जनि भोरे॥

और फिर इनकी दास्य भक्ति को तो श्रीमाता जानकीजी स्वयं श्रीमुख से प्रमाणित करती हैं, यथा—

कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन विश्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपा सिंधु कर दास॥
हरि जन जान प्रीति अति बाढ़ी।
सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी॥

सख्य— कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा।
कर गहि परम निकट बैठावा॥
सुनु कपि जिय जनि मानेसि ऊना तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना
पुनः-हनुमानजी रुद्रावतार हैं। और भगवान् शङ्कर के लिये
वो गोस्वामीजी कहते हैं।
सेवक स्वामि सखा सिय पीके।
हित निरुपधि सब विधि तुलसीके॥

आत्म निवेदन—
सुनि प्रभु वचन विलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवन्त॥

"मोहू पर रघुवीर" कहने का भाव यह है कि जब मुझ जैसे अवगुणों के भण्डार पर उनकी कृपा है तो आपतो परम भागवत होने के कारण उनकी कृपा के पात्र हैं ही।

"भरे विलोचन नीर" का भाव यह है कि प्रेम विवश होने पर जीव की यही दशा हो जाती है, यथा—
एक सखी सिय संग बिहाई। गई रही देखन फुलवाई।
तेहिं दोउ बन्धु बिलोकेउ जाई। प्रेम बिवश सीतापहिं आई॥
दो० तासु दसा देखी सखिन पुलकि गात जल नैन।
कहु कारन निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन॥

अहिल्या की भी दशा प्रेम के कारण यही हुई। यथा—
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ वचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥

अशोक वाटिका मे जानकीजी को भगवान राम का प्रेम सन्देश सुनाते हुए हनुमानजी की भी यही दशा हुई, यथा—
रघुपति कर सन्देश अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गद्‌गद् भयउ भरे विलोचन नीर॥

दूसरा भाव यह है कि प्रेम की तीन दशाओं में से दो का वर्णन (पुलकतन और मगन मन) प्रथम दोहे में कर आये हैं—

अब नेत्रों में जल भर आना, प्रेम की इस तीसरी दशा का वर्णन "भरे विलोचन नीर" कह कर इस दोहे में करते हैं।

नव हनुमत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुनग्राम॥

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी।
फिरहिं ते काहे न होंहिं दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम गुनग्रामा।
पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥

अर्थ— जो जान बूझ कर भी ऐसे स्वामी को त्याग अथवा भुला कर भटकते फिरते हैं, तो वे क्यों न दुःखी हों? इस प्रकार रघुनाथजी के गुण कहते हुए दोनों राम के प्रेमी भक्तों ने अकथनीय विश्राम (शान्ति-सुख) पाया।

समन्वार्थी श्लोक—

जानन्तश्चापि विस्मृत्य राम मेतादृशं प्रभुम्।
भ्रमन्ति ये भवेयुस्ते कथं नो दुःख भागिनः॥
इत्य रामगुणग्राम कथयन्तौ उभावपि।
अनिर्वाच्यश्च विश्रामं प्रापतुः कपि राक्षसौ॥

कवित्त—ऐसे सुहृद सुस्वामि पगन ज्यहि लगन न लागी।
सो विधि वंचित मनुज महा मति मंद अभागी॥
प्रभुगुन बरनत सुनत दुहुन तन सुरति भुलानी।
नयन नीर मन मगन दसा नहिं जात बखानी॥

भावार्थः—"अस स्वामि" का भाव कि ऐसे स्वामि केवल ये ही हैं दूसरा नहीं, यथाः—

न तस्य प्रतिमा अस्ति, यस्य नाम महद्यशः।

'अस' पद में अंगुल्यानिर्देश है यथाः—

अस सुभाव कहुँ सुनो न देखौं।
केहि खगेश रघुपति समलेखौं॥
अस प्रभु छाँड़ि भजिअ कहु काही।
मोसे सठ पर ममता जाही॥
अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित कृपाल।
तुलसीदास सठ ताहि भजु छाँड़ि कपट जंजाल॥

'अस स्वामि' का यह भाव भी सूचित होता है कि दोनों भक्तों का सम्वाद वर्णन करते हुए कवि का मन भी प्रेम में तद्रूप हो गया है अतः आप भी सम्मिलित हो कर कहते हैं कि 'अस स्वामि'। इस अर्धाली में कवि ने अपने को गुप्तालंकार से छिपाया है।

'पावा बिश्रामा' का भाव यह है कि श्री हनुमान् जी की प्रतिज्ञा थी कि-'राम काज कीन्हें बिना मोहि कहाँ विश्राम'।

तो मुख्य कार्य समुद्र पार करना था जैसा सपाति ने कहा था—

जो नाँघइ सत जोजन सागर।
करइ सोराम काज अतिनागर॥

अतएव समुद्र पार करने पर विश्राम पाना कहा। दूसरा भाव कि श्री हनुमान् जी की इच्छा विश्राम करने की नहीं थी पर श्री राम कथा अपना प्रभाव नहीं छोड़ती वह विश्राम देती ही है अत इनको विश्राम मिला।

इस प्रसग में दोनों भक्तों की समानता भी बड़ी सुन्दर रीति से दिखाई गयी है.—

श्री हनुमन्त लाल जी	श्री विभीषण जी
१–विप्र रूप धरि वचन सुनाए	राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा।
२–हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा	की तुम हरि दासन्ह महँ कोई।
३–एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी	तब तुम मोहि दरस हठि दीन्हा।
४–तब हनुमन्त कही सब राम कथा	पुनि सब कथा विभीषण कही।
५–प्रात लेइ जो नाम हमारा	तामस तन कछु साधन नाहीं।
६–कपि चंचल सबहि विधि हीना	प्रीति न पद सरोज मन माहीं।
७–अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुवीर कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे विलोचननीर	जो रघुवीर अनुग्रह कीन्हा।

८–दशा भी दोनों की एक है–'सुनत जुगल तन पुलक मन मगन'
९–*श्री हनुमान जी ने विभीषण को श्री राम जी से मिलाया* और विभीषण जी ने हनुमान को श्री सीता जी से मिलाया।

पुनि सब कथा विभीषण कही।
जेहि विधि जनकसुता तह रही॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता।
देखी चहउँ जानकी माता॥

अर्थः—फिर विभीषण जी ने सारी कथा कही, कि जिस तरह वहाँ श्री जानकी जी रहती थीं। तब हनुमान् जी बोले–हे भाई! मैं भी जानकी माता को देखना चाहता हूँ।

समानार्थी श्लोकः—
पुनराह कथां सर्वां कपेरग्रे विभीषणः।
यथा तिष्ठज्जनकजा तत्राशोक वने सती॥

तदाह हनुमान राजन भ्रातः शृणु विभीषण।
मातरं द्रष्टुमिच्छामि सीतां रामप्रियां सतीम्॥
(आनन्द रामायणे)

कवित्तः—गहि उमाँम तब सबहि कथा बरनी ज्यहीं तेही।
जिमि अशोकवन रहत सहत बहु दुख वैदेही॥
बोले तब हनुमंत चहौं पद पदुम निहारन।
रघुकुल कमल दिनेश राम को काज सवारन॥

भावार्थः—'सब कथा विभीषण कही" का भाव यह है कि जब से रावण श्री जानकी जी को हरण कर लंका में लाया है, तब से आज तक की सारी कथा सुनायी।

"जनक सुता तहँ रही" का भाव यह है कि जैसे 'सुता' अर्थात् कन्या जनक (याने पिता) के यहाँ रहती है उसी तरह हैं। दूसरा भाव कि जैसे राजकन्या रहती है उसी भाँति ये वहाँ रहती हैं। अर्थात् अनेक राक्षसियाँ रक्षा करती हैं, वहाँ पुरुष नहीं जाते। तीसरा भाव कि जैसे श्री जनक जी संसार में रह कर भी सब प्रकार से निर्लेप हैं, यथाः—

जे विरञ्चि निर्लेप उपाये। पदुम पत्र जिमि जग जल जाये॥

उसी तरह जनक सुता जानकी जी भी लंका में रह कर भी निर्लेप हैं।

"तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता" में 'भ्राता' शब्द से प्रेम निहोरा या प्रार्थना का भाव सूचित होता है।

'जानकी माता' कहने का भाव यह है कि यदि विभीषणजी कहें कि वहाँ पुरुषों का जाना निषेध है, तो इसीलिये श्री महावीर

'माता' कह कर बनाते हैं कि पुत्र को माता के पास जाने में कोई रोक नहीं होती है।

जुगुति बिभीषण सकल सुनाई।
चलेउ पवन सुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयेउ पुनि तहवाँ।
बन अशोक सीता रह जहवाँ॥

अर्थ:—विभीषण ने (सीता जी से मिलने की) सब युक्ति सुनायी। (और सुनते ही) पवन सुत श्री हनुमान जी बिदा माँग कर चल दिये। फिर वही छोटा रूप धर कर अशोक वाटिका में जहाँ सीता जी रहती थीं। वहाँ गये।

समानार्थी श्लोक:—विभीषणः समस्तां वै युक्तिमश्रावयत् क्षणात्।
आकर्ण्य प्राप्य चानुज्ञां गतः पवननन्दनः॥
पुनः कृत्वापि तद्रूपं गतस्तत्र कपीश्वरः।
यत्राशोक वने सीताऽनिष्ठद्रामप्रिया सती॥
(आनन्द रा०)

कवित्तः—सिय समाचार सुनि गुनि जुगति,
मेंटि विभीषण विरद मनि।
पुनि स्वइ लघु रूप सवारि कपि,
चल्यौ सुमिरि रघुवंश मनि॥

भावार्थः—"युक्ति विभीषण सकल सुनाई" का भाव यह है कि बिना युक्ति के वहाँ कोई जा नहीं सकता था, दूसरा भाव यह है कि विभीषणजी ने वहाँ तक पहुँचने का एक गुप्त मार्ग बताया जिससे किसी राक्षस की दृष्टि न पड़े।

"बिदा कराई" का भाव यह है कि सज्जनों को प्रेमी सेविदा माँग कर ही चलना चाहिये, यथा—

पुनः सकल मुनिन सन बिदा कराई। सीता सहित चले दोउ भाई।
"कराई" शब्द से यह भी सूचित होता है कि विभीषणजी प्रेम बश विदा नहीं करना चाहते है, श्रीहनुमानजी ने आग्रह कर विदा ली।

"कर सोई रूप" का भाव यह कि बीच में विभीषणजी से मिलने के लिये ब्राह्मण वेश धारण कर लिया था, अब पुनः वही रूप यानी जिस रूप से लंका में प्रवेश किया था बनाया.

यथा–अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना
"वन अशोक" का भाव कि लंका पहुँच कर–
बन बाग उपवन वाटिका, सर कूप, वापी सोहई।
में सबको अलग अलग देखा था। पर जहाँ श्रीजानकीजी है वह वन बाग उपवन, वाटिका चारों ही है, यथा–
बन–फिरि सोई रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन अशोक सीता रह जहवाँ
उपवन–तहँ अशोक उपवन जहँ रहई।
सीता बैठि सोच रत अहई॥
बाग–चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा।
फल खायेउ तरु तोरै लागा॥
वाटिका–नाथ एक आवा कपि भारी।
तेहि अशोक वाटिका उजारी॥

देखि मनहिं मन, कीन प्रनामा।
बैठेहि बीति जाति निमि यामा॥
कृस तनु सीस जटा इक बेनी।
जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी॥

दो०–निज पद नयन दिये मन राम कमलपद लीन।
परम दुखी भा पवन सुत देखि जानकी दीन॥

अर्थः–श्रीजानकी जी को देख कर श्री हनुमानजी ने मन ही मन में प्रणाम किया। उन्हें (सीता जी को) सारी रात बैठे ही बीत जाती है। शरीर दुबला पतला होगया है और मस्तक पर जटा कि एक बेनी होगई है, हृदय में रघुपति श्रीराम के गुण समूह का स्मरण करती हैं। नेत्रों को अपने चरणों में लगाये हुई हैं और मन श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों में अनुरक्त है। जानकी जी का परम दुःख की अवस्था में देख कर पवन कुमार परम दुखी हुए

समानार्थी श्लोकः–

दृष्ट्वा स्थाने प्रणाम स कृतवान्पवनात्मजः।
उपविष्टा व्यतीता च याममाना विभावरी॥
दृत्तं स्वपादयोर्नेत्रं रामाङ्घ्रौ लग्नं मनम्।
मनोऽभवत्कपि दुःखिनीं दीनां सीता विलोक्य च॥

कवित्तः–जुगुति जोहि बजरंग बीर या पढ़्यो अगारी।
धस्यो वाटिका बीच नाँधि दृढ़ चहर दिवारी॥
भ्रमत वाटिका बीच दीठि इक द्रुमि कपि डार्यो।
लग्यो अशोक तरु तहँ अमित आचरज निहार्यो॥

स्वर्णलता महँ इन्दु इन्दु अरविन्द सुहाये।
अरविन्दहु मकरन्द विन्दु मुकुता भरि लाये॥
लख्यो निकट चलि बैठि जनक तनया तहं सोचति।
रामचन्द्र गुन सुमिरि दुहूँ द्रगनि विमोचति॥
कृस तन बसन मलीन महा मन दीन दुखारी।
जनु कमलिनी निकाम पंक ते बाहर डारी॥
निरखि भयो कपि दुखित नीर नयननि भरि लीन्यों।
कहि मन माहि प्रणाम माथ धरनि धरि दीन्यो॥

भावार्थः—"कृस तनु सीस जटा इकवेनी" का भाव यह है कि वस्त्र अच्छी तरह ओढ़ने भर को भी नहीं है। शरीर और मस्तक सब खुला है। 'जटा इक वेनी' का दूसरा भाव कि तीनों चोटियाँ मिल कर एक वेणी हो गयी है।

"निज पद नयन" "पद कमल लीन" का भाव कि बाहर नेत्र और भीतर मन ये दोनों इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं, अतः दोनों को भगवत् ध्यान में लगाये है। साथ ही प्रभु के दर्शन एवं ध्यान में मन और नेत्र दोनों साथ साथ लगते हैं, यथाः—

बालक वृंद देखि अति सोभा।
लगे संग लोचन मन लोभा॥
पुनः—मुदित नारि नर देखहिं सोभा।
रूप अनूप नयन मन लोभा॥

"निज पद नयन दिये" का दूसरा भाव कि जो चरण चिह्न श्री राम जी के चरणों में है, वही इनके चरणों मे भी हैं, अतः अपने चरणों को देखती है।

"परम दुखी भा पवन सुत" का भाव यह है, ज
देखा था, तब तक दुखी थे, अब दशा देख कर परम द

यहाँ श्री जानकी जी की जैसी दशा है श्री भ
जब श्री भरत जी से नन्दी ग्राम में मिले तो उनको भी
में पाया यथाः—

श्री जानकी जी	श्री भरत लाल
बैठेहि बीत जात निमि यामा	बैठे देखि कुसास
कृस तनु सीस जटा इक बेनी	जटा मुकुट कृस गात
जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी	राम राम रघुपति जप
नयन स्रवहिं जल निज हित लागी	स्रवत नयन जलजात

किन्तु अन्तर इतना है कि श्री भरत को देख कर
हुआ यथाः—
देखत हनुमान अति हरषेउ । पुलकि गात लोचन जल
पर श्री जानकी जी को देख कर दुख हुआ, क
पराधीन हैं, शासन में हैं और दीन हैं पर श्री भरत जी
हैं, प्रेम मगन हैं यह देख कर सुख हुआ ।

BHARATIYA VIDYA BHAVAN LIBRARY
S. N.